नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका ❑ वर्ष-6 ❑ अंक-५ ❑ मुम्बई ❑ मई-2015 ❑ मूल्य-रु.9/-

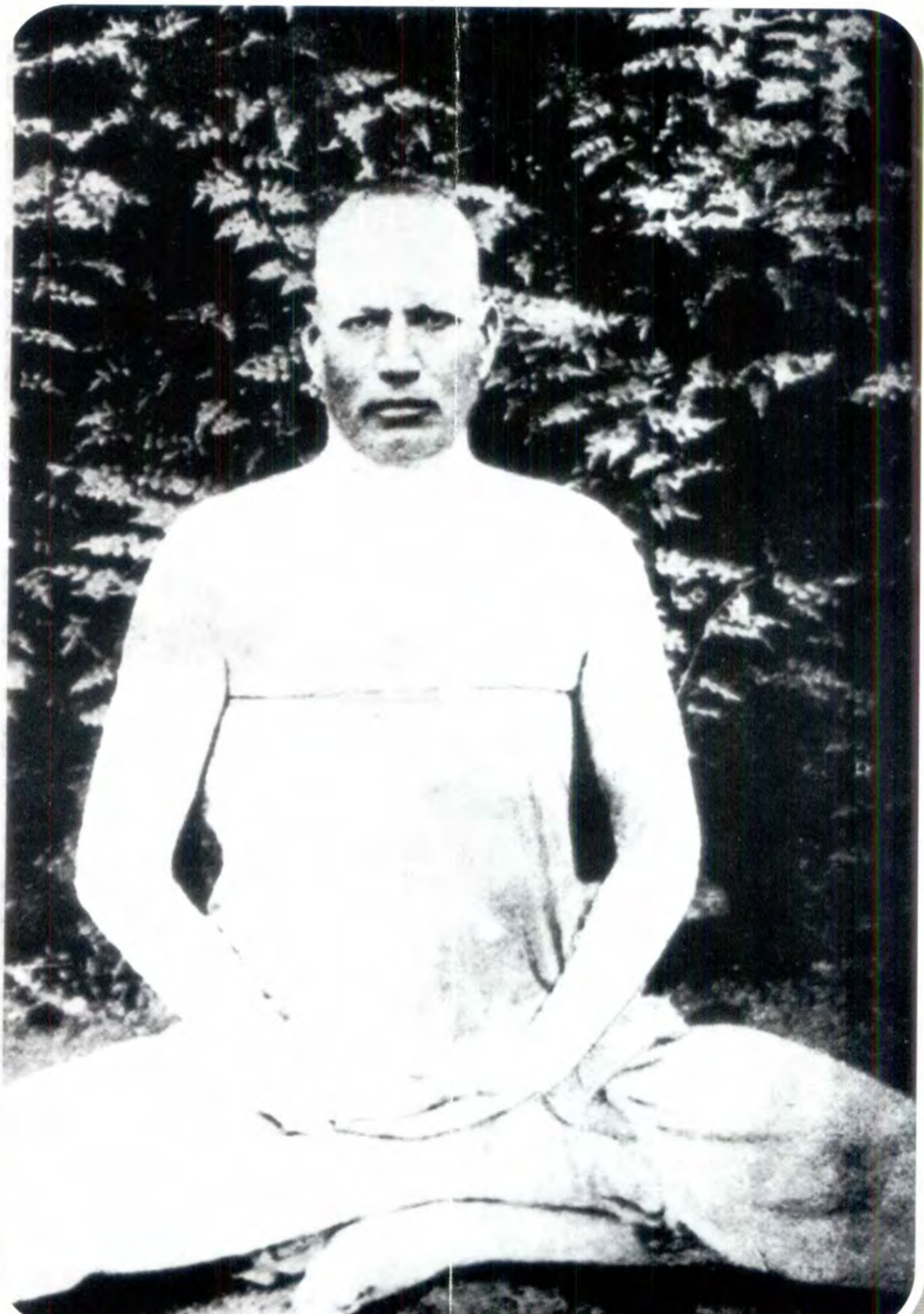

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

चतुर्दश-उपदेश
(नित्यकर्म और मुक्ति विषय)

महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रत्येक स्त्री और पुरुष के जो प्रतिदिन के कर्तव्य हैं, उनको आह्निक कर्म कहते हैं। धर्म-सम्बन्धी जो कर्तव्य हैं वे नित्यकर्म हैं। वे कर्म किसको, किस प्रकार और कहाँ तक करने चाहिएँ और किसको नहीं करने चाहिएँ, विषय पर विचार किया जाता है। बालक मूर्ख और छोटा होने के कारण माता-पिता के अधीन रहता है। ८ वर्ष की अवस्था तक उसमें धर्म-सम्बन्धी काम करने की योग्यता नहीं होती, इसलिए हमारे धर्मशास्त्रों ने व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होने से पहले बालकों के लिए नित्यकर्म का विधान नहीं किया है। इस प्रकार वर्ण, आश्रम, विद्या, आयु और शारीरिक बल इत्यादि के अनुसार शास्त्रों ने नित्यकर्म की व्यवस्था की है। धर्मानुष्ठान के सम्बन्ध में नित्यकर्म निम्नलिखित हैं।-

१. ब्रह्मयज्ञ- जो वेदों के पठन -पाठन द्वारा होता है। 'ब्रह्म' शब्द के अर्थ विद्या, वेद और परमात्मा तीनों के हैं। 'यज्ञ' शब्द का अर्थ विचार है, इसलिए ब्रह्म के अर्थ वेदों का विचार या परमात्मा का विचार हुआ। ब्रह्मयज्ञ के ठीक अर्थों को मन में जगह देकर यह स्पष्ट मालूम होता है। आजकल जिस रीति पर ब्रह्मयज्ञ किया जाता है, वह निष्फल है और फिर यह आक्षेप मन में कभी स्थान न पावेगा कि आधुनिक ब्रह्मयज्ञ शास्त्र के अनुसार नहीं है।

२. देवयज्ञ- ''**यदग्नौ हूयते स देवयज्ञ:**'' जो अग्नि में होम किया जाता है, वह देवयज्ञ है। कोई लोग देवयज्ञ का अभिप्राय देवताओं की पूजा समझते हैं, परन्तु ब्राह्मणग्रन्थों और मनुस्मृति के देखने से मालूम होता है कि इस देवयज्ञ का ठीक अभिप्राय होम अर्थात् अग्निहोत्र है। अग्नि दो प्रकार की है- जठराग्नि और भौतिकाग्नि । कोई लोग कहते हैं-

'**होमैर्देवान् यथाविधि अर्चयेत्।**' (द्र०-मनु० ३।८१) होम से विद्वानों का यथाविधि सत्कार करना चाहिए।

होम शब्द के पारिभाषिक अर्थ कभी-कभी दान और आदान के भी हो जाते हैं। फिर भी कोई मनुष्य किसी प्रकार मूर्तिपूजा को देवयज्ञ में शामिल नहीं कर सकता।

३. पितृयज्ञ- ''(यस्मिन्) पितृभ्यो ददाति स पितृयज्ञ:।'' जिसमें पितरों को दिया जावे, अर्थात् उनकी सेवा की जावे, उसे पितृयज्ञ कहते हैं। यहाँ पर पितृशब्द के अर्थ पर विचार करना चाहिए।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिर:।
अज्ञो भवति वै बाल: पिता भवति मन्त्रद:।।

में सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए, अनध्याय नहीं करना चाहिए। इस विषय में मनुजी लिखते हैं-

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
न विरोधोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ।।[1]

वेद-पाठ, नित्यकर्म और होम-मन्त्रों में अनध्याय नहीं है।

नित्यकर्म का अभिप्राय यह है कि अपने मन का लक्ष्य परमेश्वर को बनाया जावे, इसलिए प्रत्येक कर्म की समाप्ति पर यह कहा जाता है कि मैं इस कर्म का या इसके फल को परमेश्वर के अर्पण करता हूँ।

यहाँ तक नित्यकर्म का विधान हुआ।

मुक्ति-विषय

अब आगे मुक्ति के विषय में थोड़ा-सा विचार किया जाता है। मुक्ति शब्द का अर्थ छूटना है। यहाँ प्रश्न होता है, किससे छूटना? उत्तर स्पष्ट है कि दुःख, अर्थात् बन्धन से छूटना मुक्ति है। जहाँ बन्धन नहीं वहाँ मुक्ति भी नहीं। जीवात्मा बद्ध है, इसलिए इसको मुक्ति की आवश्यकता है। ईश्वर सदा मुक्त है अर्थात् बन्धन से पृथक् है, इसलिए उसको मुक्त-स्वभाव कहते हैं। मुक्ति का अधिकारी होना बड़ा ही कठिन काम है। मुक्ति की दशा में नित्य सुख का अनुभव होता है। आजकल तो लोग यह समझते हैं कि सस्ती भाजी की तरह मनमाने कामों से मुक्ति मिलता है, स्वभाव कहते हैं। मुक्ति का अधिकारी होना बड़ा ही कठिन काम है। मुक्ति की दशा में नित्य सुख का अनुभव होता है। आजकल तो लोग यह समझते हैं कि सस्ती भाजी की तरह मनमाने कामों से मुक्ति मिलती है, परन्तु यह मूर्खतापन की समझ है। मुक्ति के मनमाने चार भेद जो लोग बतलाते हैं वे ये हैं- सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य और सालोक्य, ये सब कल्पित हैं। वेदादि शास्त्रों में मुक्ति के ये भेद कहीं नहीं लिखे। प्रत्युत उनमें एक ही प्रकार की मुक्ति बतलाई है। यजुर्वेद में लिखा है-

तमेव विदित्वा ऽतिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यते ऽयनाय।[2]

''उस परमात्मा को जानकर ही मृत्यु को जीत सकते हैं, दूसरा और कोई मार्ग नहीं है।'' इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मुक्ति का मार्ग एक है और वह केवल परमेश्वर का ज्ञान है। इसपर प्रश्न होगा कि वह परमेश्वर कैसा है?

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश:।[3]

''उस परमात्मा की कोई प्रतिमा (मूर्ति या पैमाना) नहीं है, जिसका कि यश बड़ा है।'' फिर तवल्कार और बृहदारण्यक उपनिषद् को भी देखना चाहिए, जिनमें बतलाया है कि जीवात्मा के भीतर भी वह परमात्मा व्यापक है तथा उसे वाणी, मन, आँख, कान और प्राणों को भी अपने अपने कामों में लगानेवाला माना है और उसे एक तथा अद्वितीय माना है। इन सब प्रमाणों पर विचार करने से सिद्ध होता है कि परमेश्वर के ज्ञान के विना मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वह परमेश्वर अरूप, अनादि तथा अनन्त है। वही ब्रह्म सबसे बड़ा और सबका सहारा है। आजकल की मुक्ति तो यह समझी जाता है कि जीव और परमात्मा एक ही है, बस यह ज्ञान होना ही मुक्ति है। यह आजकल के वेदान्तियों का मत है, किन्तु यह सच्चा वेदान्त नहीं है और न वेदों का सिद्धान्त है। इस बात की पड़ताल करने पर कि षट् दर्शनों के प्रणेताओं की मुक्ति के विषय में क्या सम्मति है, इसका तत्त्व मालूम हो जाएगा। पहले जैमिनिकृत पूर्वमीमांसा में यह कहा है कि धर्म, अर्थात् यज्ञ से मुक्ति मिलती है और वहाँ ''**यज्ञो वै विष्णु**'' इत्यादि शतपथब्राह्मण के प्रमाण भी दिये हैं। इसपर विचार कीजिए।

फिर कणाद मुनि ने वैशेषिक दर्शन में कहा है कि तत्त्वज्ञान से मुक्ति होती है। न्यायदर्शन के रचयिता गौतम ने अत्यन्त दुःख-निवृत्ति को मुक्ति माना है। मिथ्याज्ञान के दूर होने से बुद्धि, वाक् और शरीर शुद्ध होते और इनकी शुद्धि से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है, वही मुक्ति की अवस्था है। योगशास्त्र के कर्ता पतञ्जलि मानते हैं कि चित्तवृत्तियों का निरोध करने से शान्ति और ज्ञान प्राप्त होते हैं और इससे कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। सांख्यशास्त्र के प्रणेता महामुनि कपिल कहते हैं कि तीन प्रकार के दुःखों की (अत्यन्त) निवृत्ति होना ही परम पुरुषार्थ (मुक्ति) है। अब देखिए कि उत्तरमीमांसा अर्थात् वेदान्तदर्शन के रचयिता वादरायण (व्यास) क्या कहते हैं-

अविभागेन दृष्टत्वात्।।
चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडलोमि:।।
अभावं बादरिराह होवम्।।
(भावं जैमिनिर्निर्विकल्पामननात्।।
द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽत:)।।

व्यास के मत से मुक्ति की दशा में अभाव और भाव दोनों रहते हैं। मुक्त जीवात्मा का परमेश्वर के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध रहता है। दोनों एक अर्थात् जीवात्मा का अभाव कभी नहीं होता।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च।।

परमेश्वर के ज्ञान, सामर्थ्य और आनन्द जीवात्मा को प्राप्त होते हैं।

ईश्वर का आनन्द असीम है, वैसा आनन्द मुक्त-जीवात्मा तो हो ही नहीं सकता। जीव-ब्रह्म में अभेद मानने से धर्मानुष्ठान के सब साधन योग, तप और उपासना आदि सब निष्फल हो जाएँगे, इसलिए परमात्मा और जीवात्मा को एक मानना ठीक नहीं है। व्यापक और व्याप्य, सेव्य और सेवक आदि सम्बन्ध ईश्वर और जीव में वर्तमान रहता है और यही सम्बन्ध जीवात्मा के जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारे का कारण होता है।

।। ओ३म् शान्ति: शान्ति: शान्ति:।।

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ६ अंक ५ (मई -२०१५)

- दयानंदाब्द : १९२, विक्रम सम्वत् : २०७१
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११६

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विट्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
चतुर्दश उपदेश	२
सम्पादकीय	३
जीवन के चार गुण	४-५
ऋषि दयानंद जी के पत्रों में	६
विचार शक्ति का चमत्कार	७
जीवन में रंगों का महत्व	८-९
डी.ए.वी. कालेज के संस्थापक महात्मा	१०
भारतीय महीनों के नाम और उनका औचित्य(२)	११
बंधन नहीं अनुशासन	१२-१३
हम स्वयं अपने भाग्य विधाता हैं।	१३
यज्ञ-ध्वनि-प्रदूषण निवारक	१४
दर्शनों में ईश्वर का स्वरूप	१५
शिष्टाचार	१६

सम्पादकीय महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्त

महर्षि दयानन्द भटके हुए वैदिक धर्मियों के लिये संजीवनी बनकर आये। महर्षि ने हमें शास्त्रार्थ और तर्क के आधार पर स्मरण कराया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया। महर्षि द्वारा रचित ग्रन्थों में वैदिक सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन है। यज्ञ और संस्कार पर महर्षि ने विशेष बल दिया है। यज्ञ को अग्निहोत्र तक सीमित न रखकर सम्पूर्ण ईश्वरीय व्यवस्था को ही महर्षि ने यज्ञ कहा है। महर्षि द्वारा रचित ग्रन्थों के कुछ अंशों को देखने से बात स्पष्ट हो जाती है संस्कार विधि में एक जगह महर्षि लिखते हैं कि ऋत्विजों का लक्षण अच्छे विद्वान् धार्मिक जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल निर्लोभ परोपकारी दुर्व्यसनों से रहित कुलीन सुशील वैदिक मत वाले वेदवित् एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें।

जो एक हो तो उसको पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक, पुरोहित और तीन हों तो ऋत्विक, पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा।

सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि ये दो यज्ञ अर्थात् एक 'ब्रह्मयज्ञ' जो पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना। दूसरा 'देवयज्ञ' जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना। परन्तु **ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।**

संस्कारविधि में यज्ञकुण्ड का परिमाण शीर्षक में महर्षि लिखते हैं कि जो लक्ष आहुति करनी हो तो चार चार हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में एक हाथ चौकोण लम्बा चौंडा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हो उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना। परन्तु अधिक आहुतियों में दो दो हाथ (अधिक) अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना और जो पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा और चौड़ा सम चौरस और पौन हाथ नीचे,.........।

महर्षि के ग्रन्थों में वर्णित उपरोक्त संदर्भ में दो विषय मुख्य हैं। एक ऋत्विज् जो संस्कार कराता है एवं दूसरा यज्ञ क्रिया में दी जाने वाली आहुति की संख्या के अनुरूप यज्ञकुण्ड का निर्माण करना। -

संस्कार विधि में ऋत्विज की व्याख्या महर्षि ने स्पष्ट लिखी है। **सत्यार्थ प्रकाश में ब्रह्मचारी के लिये सिर्फ ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही निर्देश लिखा है।** इससे स्पष्ट है कि संस्कारों को सद्गृहस्थ विद्वानों से ही कराया जाना चाहिए। विवाह संस्कार आदि महत्वपूर्ण संस्कार एक सद्गृहस्थ विद्वान जो इन अनुभवों से गुजर चुका है वही कराये तो ज्यादा सार्थक रहेगा।

इसी तरह एक समय में एक ही यज्ञ कुण्ड का विधान है। लक्ष आहुतियां, पचास हजार आहुतियां होने पर भी महर्षि ने अनेक कुण्डों का विधान नहीं किया है।

वर्तमान स्थिति में ब्रह्मचारियों द्वारा संस्कार कराना एवं बहुकुण्डीय यज्ञ का प्रचलन यदि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप हैं तो कोई आपत्ति की बात नहीं है किन्तु यदि ये क्रियायें सिद्धान्तों की अवलेहना करके मात्र आर्थिक लाभ की दृष्टि से की जा रही हैं तो यह निश्चित ही चिन्ता का विषय है। विद्वानों को इन विषयों पर महर्षि के सिद्धान्तों/मन्तव्यों को सामने रखकर विषय स्पष्ट करना चाहिए वरना वह दिन दूर नहीं जब आम जनता अन्य पाखण्डियों की तरह आर्य समाजों को भी बहुकुण्डीय यज्ञ की आड़ में यजमानों से धन उगाही करने वाली संस्था के रूप में देखेंगी। हमारे लिये सिर्फ महर्षि के सिद्धान्त जो उन्होंने हमें वेद ज्ञान के आधार पर बताये हैं वही सर्वोपरि हैं अन्यथा फिर तथाकथित पोंगापंथियों द्वारा नियन्त्रित सम्प्रदायों में और आर्य समाज में फर्क क्या रह जायेगा।

- संगीत आर्य - 9323 573 892

जीवन के चार गुण

आचार्य प्रियव्रत

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा
शास्ते यजमानो हविर्भिः
अहेळमानो वरूणेह बोध्यु
रुशंस मान आयुः प्रमोषी ॥११॥

अर्थ- हे देव! मैं **(त्वा)** तुमसे **(तत्)** उस व्रतपालन को **(यामि)** माँगता हूँ **(ब्राह्मणा)** वेद के द्वारा **(वन्दमानः)** वन्दना करता हुआ **(अहेळमानः)** किसी से क्रोध न करता हुआ **(यजमानः)** यह यजमान मेरा आत्मा **(हविर्भिः)** हवियों द्वारा **(तत्)** उस व्रतपालन को आपसे **(आशास्ते)** माँगता है **(वरूण)** हे वरणीय देव! **(इह)** इस अवस्था में **(बोधि)** मेरी प्रार्थना को जानिए, सुनिए **(ऊरुशंस)** हे बड़े-बड़ों द्वारा प्रशंसित देव ! **(नः)** हमारी **(आयुः)** आयु को **(मा)** मत **(प्रमोषीः)** छीनिए।

पीछे नवम मन्त्र में कहा गया था कि भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए जीवन निष्पाप होना चाहिए। दशम मन्त्र में भगवान् के अदब्ध व्रतों की ओर संकेत करते हुए यह निर्देश किया गया था कि प्रभु के निर्धारित नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करने से ही वह पवित्र हो सकता है। प्रस्तुत मन्त्र में उसी नियम-पालन के जीवन की भगवान् से विशेषरूप में प्रार्थना की गई है और उसी प्रार्थना के प्रसङ्ग में यह भी बता दिया गया है कि हमारा जीवन भगवान् के निर्धारित नियमों के अनुसार किस प्रकार बीत सकता है।

मन्त्र का उपासक अपने भगवान् से कह रहा है कि हे भगवन्! मैंने देख लिया है कि आपके पास जो हमारे क्लेशों को काटनेवाली सैकड़ों और हज़ारों औषधियाँ हैं, आप जो हमारे ऊपर असंख्य मङ्गलों की वर्षा करने की शक्ति रखते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए हमारे जीवनों का पापरहित होना आवश्यक है और इसके लिए आपके बनाये वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के नियमों का पालन करना आवश्यक है। तो हे भगवन्! मैं आपसे आपके उन नियमों के पालन की शक्ति की ही प्रार्थना करता हूँ। मैं आपकी कृपा से आपके इन सब नियमों का भली-भाँति पालन कर सकूँ।

उपासक कहता है कि हे भगवन्! मैं आपसे 'तत्' अर्थात् उस नियम-पालन की ही याचना करता हूँ, परन्तु आपसे नियम-पालन के जीवन की प्रार्थना करने वाला मैं याचक ऐसा-वैसा याचक नहीं हूँ। मेरे याचना करने के प्रकार को भी आप देख लीजिए। मैं ''ब्रह्म'' द्वारा ''वन्दमान'' हो चुका हूँ, ''अहेळमान'' हो चुका हूँ, और ''यजमान'' हो चुका हूँ और ''हवियों'' का दान करनेवाला हो चुका हूँ। इस प्रकार ब्रह्म के द्वारा वन्दमान, अहेळमान और यजमान होकर हवियों के दान के जीवन द्वारा मैं आपसे नियम-पालन के जीवन की याचना करता हूँ। उपासक के इस कथन का रहस्य समझ लेना चाहिए। ''ब्रह्म'' वेद- विद्या को कहते है। ''वन्दमान'' कहते है वन्दना करनेवालो को, उपासना करनेवाले को। उपासक कहता है कि मैं वेद के द्वारा वन्दमान बन चुका हूँ। वेद में उपासना करने का, भगवान् की सेवा में पहुँचकर उन्हें रिझाने का जो प्रकार बताया गया है वह मैंने जान लिया है। अपने और परमात्मा के स्वरूप को पहचानकर मैं वेद में कहे अनुसार नित्य परमात्मा की उपासना किया करता हूँ। मैं भगवान् का भक्त बन गया हूँ। मेरी लौ सदा भगवान् में लगी रहती है। मैं भगवान् के प्रेम में रत रहता हूँ। मैं भगवान् में विश्वास रखनेवाला पूर्ण आस्तिक बन चुका हूँ। इसके साथ ही में वेद के द्वारा ''अहेळमान'' भी बन चुका हूँ, ''अहेळमान'' का शब्दार्थ होता है क्रोध न करनेवाला। उपासक कहता है कि वेद में जीवन को क्रोधरहित बनाने के लिए जो उपदेश दिये गये हैं, मैंने उनका पूर्ण रीति से मनन और पालन किया है। इसके परिणामस्वरूप मेरा जीवन क्रोधरहित हो गया है।

मैं जो क्रोध में भरकर दूसरे प्राणियों को कटु शब्दों का प्रयोग करके और क्रोध के अधिक आवेश में अन्य उपायों द्वारा हानि पहुँचाकर कष्ट दिया करता था, वह मैंने अब छोड़ दिया है। अब मैं क्रोध को त्यागकर अहिंसाव्रत का व्रती बन गया हूँ। अब मैं किसी प्रकार की छोटी-बड़ी उत्तेजना से उत्तेजित होकर क्रोध में भरकर किसी को कोई कष्ट देने के लिए, किसी का किसी प्रकार का अनिष्ट करने के लिए, उद्यत नहीं हूँ। मेरे हृदय में अब क्रोध का स्थान प्रेम और शान्ति ने ले-लिया है। वेद के अध्ययन से मुझमें एक और परिवर्तन आ गया है। मैं वेद के स्वाध्याय द्वारा ''यजमान'' बन गया हूँ। ''यजमान'' कहते हैं यज्ञ करनेवाले को। उपासक कहता है कि वेद में जीवन को यज्ञमय बनाने का जो उपदेश है, उसको मैंने ग्रहण किया है। उसके ग्रहण से मेरा जीवन अब यज्ञ का जीवन हो गया है। ''यज्ञ'' का शब्दार्थ होता है देवपूजा, संगतिकरण और दान। उपासक कहता है वेद के द्वारा मेरा जीवन यज्ञमय होकर देवपूजा, संगतिकरण और दान का जीवन बन गया है। मैं अब देवों की पूजा करता हूँ। देवाधिदेव परमात्मा की पूजा तो मैं नित्य करता ही हूँ, क्योंकि मैं ''वन्दमान'' बन, चुका हूँ। इसके अतिरिक्त विद्वान पुरुषों की और अनुभव के धनी बड़े-बूढ़ों के रूप में जो अन्य देव हैं, उनकी भी पूजा मैं नित्य करता हूँ। मैं उनका प्रतिदिन यथोचित आदर-सत्कार करता हूँ। मेरे जीवन में अब संगतिकरण होता है। मैं योग्य पुरुषों के साथ विशेष कर ''देव'' पुरुषों के साथ अपने जीवन को सङ्गत करता हूँ- उनकी सङ्गति में बैठता हूँ। उनकी संगति में बैठकर उनसे भाँति- भाँति के गुणों को सीखता हूँ। अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, विद्युत आदि जो जड़देव हैं, मैं उनके साथ भी अपने आपको सङ्गत करता हूँ। उनकी सङ्गति में बैठकर मैं उनकी रचना, उनके नियमों, उनके कार्यों और कारणों के विषय में ज्ञान प्राप्त करता हूँ। उन विषयक भाँति-भाँति की विद्याओं की शिक्षा प्राप्त करता हूँ। मेरा जीवन अब दान का जीवन हो गया है। देवों की पूजा और देवों के साथ सङ्गति करने से मुझे जो कुछ प्राप्त होता है, मुझे जो लाभ होता है, मुझे जो शक्ति मिलती है, उसका मैं दान करता रहता हूँ। मेरे पास जो कुछ होता है, उसे मैं औरों को बाँटता रहता हूँ। मेरा जीवन अब दान का, उपकार का दूसरों को अपना अङ्ग समझकर अपने पदार्थ उनको देते रहने का जीवन हो गया है। यजमान शब्द में छिपे हुए 'दान' अर्थ से जो भाव निकल रहा था उसी को प्रकारान्तर से और स्पष्ट करके उपासक कहता है कि वेद के द्वारा मेरा जीवन 'हवि' का जीवन हो गया है। मैं अब जीवन द्वारा हवियाँ देता रहता हूँ। हम

जब अपने पदार्थों को दूसरों के निमित्त त्यागते हैं, दान करते हैं, तब उन पदार्थों को 'हवि' कहा जाता है, इसलिए यज्ञ में मन्त्रों द्वारा आहुति देकर अग्नि में छोड़े हुए पदार्थ को 'हवि' कहते हैं। यज्ञाग्नि में दी गई आहुति आत्मत्याग की भावना का चिह्नरूप होती है। सारे ही यज्ञ यजमान के हृदय में विशेष भावनाओं को जगाने के लिए चिह्नरूप होते हैं। उपासक कहता है कि मेरा जीवन 'हवि' का जीवन हो गया है। मैं अपने पदार्थों को, अपनी सब प्रकार की शक्तियों को, 'हवि' बना-बनाकर लोकोपकार के लिए दान करता रहता हूँ। यज्ञाग्नि में दी गई 'हवियों' में जो आत्मत्याग की भावना निहित है, वह अब मेरे भीतर आ चुकी है। मेरा जीवन अब पूर्ण आत्मत्याग का, पूर्ण बलिदान का जीवन बन चुका है। मेरा अब कोई कार्य अपने तुच्छ स्वार्थ के निमित्त नहीं होता। अब स्वार्थ का स्थान मेरे जीवन में परार्थ ने ले-लिया है। अब जो कुछ मैं करता हूँ सब लोक-कल्याण की भावना से करता हूँ। मेरे जीवन में अब जो कार्य स्वार्थ के लिए भी हो रहे दिखते हैं, वे भी इसलिए हो रहे होते हैं कि मैं उनके द्वारा शक्ति पाकर लोकोपकार के कार्य और अधिक कर सकूँ। अब तो मेरे जीवन में 'हवि' ही 'हवि'- 'त्याग' ही 'त्याग'- रह गया है।

हे भगवन् ! मैं वेद के द्वारा अपना जीवन ऐसा वन्दमान, अहेळमान, यजमान और 'हवियों' का दान करनेवाला बनाकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। ऐसा बनकर मैं आपके द्वारा निर्धारित जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक नियमों के पालन की प्रार्थना करने आया हूँ। अब तो आप मेरी सहायता कीजिए।

पाठक देखेंगे कि मन्त्र के उपासक ने अपना वर्णन करते हुए भगवान् से नियम-पालन की जो जीवन में सहायता की कृपा करने की प्रार्थना की है उसके द्वारा वेद ने कैसी अद्भुत कवितामयीशैली में यह बता दिया है कि किस प्रकार के लोग भगवान् के निर्धारित नियमों का पालन कर सकते हैं। जो लोग परमात्मा के विश्वास और उसकी उपासना का आस्तिक जीवन व्यतीत करते हैं, जिन्होंने हृदय के क्रोध आदि विकारों को जीतकर उनके स्थान में प्रेम, अहिंसा, शान्ति आदि भावों को दृढ़ कर लिया है, जो देवपुरूषों का आदर और सत्कार करते हैं, जो ज्ञानी देवों और जड़देवों की सङ्गति में जाकर विविध प्रकार के ज्ञान- विज्ञान को उपलब्ध करते हैं और अन्त में जो अपनी सब उपलब्ध सामग्री को लोकोपकार के लिए खर्च कर डालने की वृत्ति को आत्मा में जगा लेते हैं, वे लोग ही प्रभु के नियमों का भली-भाँति पालन कर सकते हैं और उन्हीं को नियम-पालन में भगवान् की ओर से सहायता मिलती है। जो लोग इस प्रकार का यज्ञमय जीवन नहीं बनाते उनके हृदय में रहनेवाली काम, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थ आदि की राजस् और तामस् वृत्तियाँ उनके जीवन को इस प्रकार का बना देंगी कि उनसे भगवान् के द्वारा निर्धारित वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के नियमों का पालन नहीं हो सकेगा। नियमित जीवन में त्याग करना होता है। ऐसे लोग त्याग नहीं कर सकते और ऐसे लोगों की कोरी शाब्दिक प्रार्थना से भगवान् उन्हें कोई सहायता नहीं देने लगे। क्रियाशील, प्रयत्नवान् पुरुष को ही भगवान् की सहायता प्राप्त होती है। सन्मार्ग के अविश्रान्त पथिक पर ही भगवान् अपनी कृपा की वर्षा किया करते हैं।

मन्त्र के अन्तिम चरण में उपासक भगवान् से कह रहा है कि हे देव ! मैं अमुक-अमुक गुणोंवाला बनकर आपकी सेवा में प्रार्थना करने आया हूँ, इस अवस्था में तो आप मेरी प्रार्थना को सुनिए और मेरी प्रार्थना को सुनकर मेरी आयु का प्रमोष मत कीजिए- उसे मूझसे मत छीनिए। उपासक की इस उक्ति का भाव भी हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। पाठक देख रहे हैं कि मन्त्र में नियम-पालन के जीवन की प्रार्थना की जा रही है। प्रार्थना के प्रसङ्ग में ही उपासक के विशेषणों द्वारा यह भी निर्दिष्ट किया गया है किस प्रकार के लोग भगवान् के निर्धारित नियमों का पालन कर सकते हैं। इस प्रकार मन्त्र में भगवान् के बनाये हुए नियमों के जीवन की महिमा का वर्णन हो रहा है। इस प्रसङ्ग में मन्त्र के अन्तिम चरण द्वारा कि जा रही प्रार्थना का आशय स्वयं स्पष्ट हो जाता है। जिस जीवन में नियमों का पालन है, वही वास्तव में जीवन है। जो व्यक्ति अपनी आयु नियम-पालन के जीवन में लगा पाता है, उसी की आयु वास्तव में सफल है। वास्तव में तो आयु उसी को मिली है, क्योंकि उसने अपनी आयु का वास्तविक सदुपयोग किया है। जिसने अपनी आयु प्रभु द्वारा निर्धारित नियमों के पालन में नहीं लगाई है उसकी आयु व्यर्थ गई है। उसकी आयु मानो उससे छिन गई है, क्योंकि उसको आयु का वास्तविक सदुपयोग नहीं प्राप्त हो सका है। आयु का उद्देश्यहीन होकर व्यर्थ जाना उसका छिन जाना ही है, फिर भगवान् ने यह मनुष्य का जीवन हमें इसीलिए प्रदान किया है कि इसके द्वारा हम जीवन का परम पुरुषार्थ- इस लोक और मोक्ष दोनों का सुख प्राप्त कर सकें। वह पुरुषार्थ प्राप्त होता है जीवन में प्रभु के नियमों का पालन करने से। जो मनुष्य-जीवन पाकर भी प्रभु के कल्याण-कारी नियमों का पालन नहीं करता, प्रत्युत उन्हें तोड़ता रहता है, उसे भगवान् फिर किसी और योनि में भेज देते हैं और इस प्रकार मनुष्य का जीवन उससे छीन लेते हैं। उपासक कह रहा है कि हे प्रभो ! आप मेरी प्रार्थना को सुनिए। मुझे नियम- पालन के जीवन में सहायता दीजिए जिससे मेरा यह मनुष्य-जीवन सफल हो सके, मेरा यह मनुष्य-जीवन मुझसे छिन न सके। जब मैं मृत्यु को प्राप्त करूँ तब उसके अनन्तर मोक्ष नहीं तो मनुष्य-जीवन को तो आपकी कृपा से फिर भी अवश्य प्राप्त कर सकूँ। आप मेरे दुष्कर्मों से पूर्ण, नियमहीन जीवन से अप्रसन्न होकर मेरी मनुष्य-योनि को मुझसे न छीनें।

मन्त्र में वरुणदेव का- वरणीय भगवान् का-एक विशेषण ''उरुशंस'' आया है। ''उरुशंस'' का अर्थ होता है जो बड़े-बूढ़ों द्वारा प्रशंसित हो। भगवान् ''उरुशंस'' हैं। बड़े-बड़े विचारशील आचार्य, ऋषि, मुनि और तत्त्ववेत्ता लोग भगवान की महिमा के गीत गाते हैं और उसके गीत गाते हुए थकते नहीं हैं। ''उरुशंस'' का अर्थ महान् स्तुतिवाला भी होता है। भगवान् में अनन्त गुण हैं, इसलिए उनकी अनन्त-स्तुति हो सकती है। ''उरुशंस'' का अर्थ महान् शंस, अर्थात् उपदेशवाला भी हो सकता है। भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में वेद द्वारा महान् उपदेश दिया है। इस समय भी वे भक्तजनों के हृदय में प्रकाश देते रहते हैं। इस प्रकार महान् उपदेष्टा होने से भी भगवान् ''उरुशंस'' हैं। ऐसे भगवान् ही हमें नियम-पालन के जीवन में सहायता दे सकते हैं।

हे मेरे आत्मन् ! तू भी ब्रह्म का पारायण किया कर- वेद का अध्ययन किया कर। तेरा जीवन भी वन्दमान, अहेळमान, यजमान और हविर्दान का जीवन हो जाएगा। तदनन्तर तेरे लिए प्रभु के नियमों का पालन सुगम हो जाएगा। उसके परिणामस्वरूप भगवान् की कृपा तुझपर बरसने लगेगी।

॥ ओ३म् ॥

ऋषि दयानंद जी के पत्रों में व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा-१

डा. अशोक आर्य

स्वामी दयानंद सरस्वती एक उत्तम प्रबंधक थे। वह जानते थे की उत्तम व्यवस्था के बिनाकिसी कार्य में सफलता नहीं मिलती। इसलिए व्यवस्था का उत्तम्होना आवश्यक है। इसी कारण ही समय समय पर वह व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार रखते रहे हैं। उनहोंने इस व्यवस्था सम्बन्धी मुद्दों को समसामय पर अपने लिखे गए पत्रों और समय समय पर किये गए विज्ञापनों में खूब उठाया है। आओ हम स्वामी जी के पत्रों और विज्ञपनों के आधार पर स्वामी जी की व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा को प्रकाश में लायें :-

पूर्ण सं.

आपके संस्कृत पाठशाला खोलने का विचार सुनकर मुझे हर्ष है। इससे पूर्व कि आप इस सर्वोपयोगीकाम को हाथ में लें, मुझे सूचना दें कि पाठशाला में पढाये जाने वाले भिन्न आवश्यक ग्रन्थ तय्यार हैं।... कुरआन नगरी एन पूरा तय्यार है परन्तू अभी तक छापा नहीं गया।

बाबू हरिशचंद्र चिंतामणि की बड़ी कुटिलता और बुरे आचार के कारण वेदभाष्य के प्रेस में से उचित समय पर निकलवाने में देर हो गई है। अब वह बाहर निकाल दिया गया है और उसके स्थान में एनी प्रमुख नियुक्त हुआ है...।

मुंशी इन्द्रमणि की अध्यक्षता में मुरादाबाद में मेरा एक यन्त्रालय सोलने का विचार है..... इससे हमारे काम में बड़ी सहायता होगी... उन्हें समय आने पर धन लेने का अधिकार है।१

(पूर्ण संख्या ३२९) पत्र - सारांश

(साहू श्याम सुन्दरदास, मुरादाबाद)

(लडके का) यज्ञोपवीत संस्कार कराकर उसको घर में ही पढाओ। आजकल गुरूकुल का प्रबंध ठीक नहीं है और इसका विवाद मत करना।२

(पूर्ण संख्या ३३०) पत्र

(भाषानुवाद)

प्रिय कर्नल अल्काट

..... बम्बई गवर्नर के साथ बातचीत करके आपने बुधिमता का काम किया है और अब आपके भारत रहने तथा वैदिक धर्म के प्रचार के पवित्र कार्य के लिए विभिन्न स्थानों में भ्रमण के विषय में ब्रिटिश सरकार सशंक न होगी। .... यह सुनकर कि आपने नागरी पढ़नी आरम्भ कर दी है बहुत प्रसन्न हुआ।

एक मासिक पत्रिका के प्रकाशंके लिए आप का प्रस्ताव बहुत ठोस है।....

पत्रिका का नाम थियोसोफिस्ट अथवा ''आर्यसमाज'' रखें। आप आर्य समाज स्थापना तिथि बम्बई आर्यसमाज से प्राप्त कर सकते हैं।

(पूर्ण संख्या ३५१) पत्रांश

छापा खाना के वास्ते एक हजार फरूखाबाद से हुआ है। अब अपना छापाखाना स्वतन्त्र कराया जावेगा। तुम भी मुंबई में इसके वास्ते चन्दा करो। हमारा विचार मार्गशीर्ष तक अपना छापाखाना कर लेने का है।-[३]

(पूर्ण संख्या ३५३) पत्र

.... हमारे रहने का स्थान शहर से एक मील अलग रहे, इसके दूर न हो। व्याख्यान का मकान शहर में हो। और रहने के मकान की आबोहवा अच्छी देख लेना। और हरिहर क्षेत्र में मेला में जायेंगे। वहां का भी बंदोबस्त, मकान, डेरा, तम्बू वगैरा का कर लेना,... और अगले महीना बनारस में आकर छापाखाना अपना बनवाने की तजवीज करेंगे।-३

(पूर्ण संख्या ३५८) पत्रांश (मुंशी समर्थादान ....)

कर्नल अलकाट साहब को मेरे शारीर का हाल विदित नहीं है कि दस मॉस तक तो दस्तों का रोग रहा। पश्चात एक बड़ा ज्वर आनेलागा सो तीन बारी आकर छूट गया है। अब दोनों रोग नहीं हैं, परन्तु विचार करो कि इतने रोग के पश्चात् निर्बलता और सुस्ती कितनी हो सकती है। इसमें भी हमको कितने काम आवश्यक हैं जिन से दम भर अवकाश नहीं मिला सकता। जो एक जन्मचारित्र के लिखने लिखवाने का कम ही होता, तो एक बार लिख लिखवा के भेज दिया होता।-[१]

(पूर्ण संख्या ३५९) पत्रांश

.... कार्तिक पूर्णमासी के अनंतर काशी में जाकर छापेखाने का प्रबंध किया जावेगा और वहां आधे चैत या अंत चैत तक ठहरेंगे।-[३]

(पूर्ण संख्य ३६६) पत्र

मुंशी बक्तावरसिंह मंत्री आर्यसमाज साहजहान पुर ने ३०) रुपये मावारी पर छापेखाने का सब प्रबंध करने के लिए सरकारी नौकरी छोड़ के आने का स्वीकार किया है। ये बहुत अच्छे आदमी हैं। तीनों भाषा पढ़े हुए सब काम अच्छा चलेगा छापेखाने का काम सब जानते हैं।-१

(पूर्ण संख्या ३६८ पत्र

.... साहब लोग अंग्रेज निम्नलिखित बनारस आकर मेरे पास राजा विनयनगर के बाग़ में जो निकट महमूदगज है, ठहरेंगे। इसलिए आपके लिखा जाता है कि यदि आपको दूध अंग्रेजों से मुलाकात करनी हो, तो सोल हवा तक मेरे पास उक्त बाग में चले आइये।-२

(पूर्ण संख्या ३७२) कार्ड

एक रॉयल प्रैस तो आप लेंगे ही परन्तु एक छोटा प्रेस भी जिसमें प्रूफ उठाने का कम लिया जाता है अवश्य लेना चाहिए। और यह सब सामग्री अमृत (बाजार) पत्रिका के सम्पादक की सम्मति से लीजिएगा क्योंकि वे इस विषय के जानकार हैं।-३

(पूर्ण संख्या ३७५) पत्र

पंडित मंडनराम जी ने मुझ से चलते समय कहा था कि मैं जीविका के लिए अत्यंत दु:खी हूँ आप मुझे अपने साथ रखिये इसलिए आप उनसे पूछ कर लिखिए यदि उनाकी इच्छा हो तो काशी में मेरे पास चले आवें - दुसरे यह कि यदि वहां छापेखाने के केस तैयार मिलें सकते हों तो हम को लिखिये हमको उनकी जरूरत है। -१

(पूर्ण संख्या ३७७) उर्दू पत्र

..... जमीय असबाब छापेखाने का मय कागज़ व रोशनाई व प्रूफ्सीत वगैरा के कलकते से यहाँ आ गया। व् पांच मन टैप तो राजा साहब ने मुरादाबाद से मेरे पास भेज दिए हैं। व्

.... **संस्कृतवाक्यप्रबोध में अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि के कारण टीन हैं।** एक शीघ्र बनाना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना। दूसरा भीमसेन के आधीन शोधने का होना और मेरा करीब आठ मन के कलकत्ते से कहिड किये गए हैं गरज की अन्दर एक महीने के कार छापेखाने का इजारा हो जावेगा।-१

(पूर्ण संख्या ३८८) विज्ञापन

सब सज्जनों को विदित हो कि आज में इस आर्य्यावर्त देश के निवासियों के लिए बड़ी प्रसन्नता की बात प्रकट करता हूँ कि संवत् १९३६ माघ शुक्ल २ ब्रहस्पतिवार, के दिन यहाँ काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर श्रीयुत महाराजे विजयानागराधिपति के स्थान में ''वैदिक यन्त्रालय'' नियत किया गया है। जिसमें वेदभाष्य ...... युक्त पुस्तक मुद्रित हुआ करेंगे - **इस यन्त्रालय के अधिष्ठाता श्रीयुत स्वामी दयानंद सरस्वती जी हैं और उनकी और से मैं बख्तावरसिंह जो की मंत्री आर्य्यसमाज शाहजहांपुर का था, प्रबंधक नियत हुआ हूँ।....** इस यन्त्रालय से मुद्रित पुस्तकों में श्रेष्ठ कागज़ लगा करेगा और अक्षर भी सुन्दर, स्पष्ट, और शुद्ध हुआ करेंगे। -२

(पूर्ण संख्या ४०९) पत्र

कल फर्रुखाबाद में के कम्पू में भी शाखा समाज स्थापित हो गया।

(पूर्ण संख्या ४१४) पत्र

अब इस्तीफा सरकारी नौकरी का दे दीजिये, जब तक तुम काम करने वाले हो, जब तक तुम्हारे शरीर मेंप्रान हैं और सामर्थ्य है तब तक आनंद में काम किया करो और पश्चात् भी तुम्हारी सलाह से कम हुआ करेंगे और **वसीयतनामा** की सभा के सभासद अब आर्य्यसमाज के हैं। - ४

(पूर्ण संख्या ४४९) पत्र

न देखना न प्रूफ को शोधना। तीसरा छापेखाने में उस समय कोई कम्पोजीटर बुद्धिमान् न होना, लैपों की न्यूनता होनी।। इसके उत्तर में जो जो **उनकी सच्ची बात है सो-सो शोधक और छपा का दोष रहेगा। १**

(पूर्ण संख्या ४५७) पत्र

मेला चांदापुर का वहां क्या अचार होगा।.... चिट्ठी के देखते हि १० वेदभाष्य और ५ भूमिका उन्हींके साथ १०० पुस्तक चांदापुर की मेरठ आर्यसमाज में भेज दो। -२

इस सब से यह बात सामने आटी है कि स्वामी जी व्यवस्था का विशेष ध्यान रखते थे। वह जानते थे कि व्यवस्था में किंचित सी भूल भी कार्य की पूर्णता, कार्य की सफलता में संदेह पैदा कराती है। इस लिए स्वामी जी सदा ही उत्तम व्यवस्था का प्रयत्न करते थे तथा इस के लिए अपने सह्चयों को आदेश देते रहते थे।

१०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी २०१०१०
गाजियाबाद
दूरभाष ०१२० २७७ ३४००

विचार शक्ति का चमत्कार

(सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर)

जीवात्मा पूरा जीवन अप्राप्त का प्रयास व प्राप्त की रक्षा तथा विचारों की आवागाही में ही बीता देता है और ढ़ेरों भौतिक सुख साधन व सूक्ष्म सुख जुटा लेता है। लेकिन क्या हमने कभी विचार किया है कि क्या यह सभी चीजें आत्मा के साथ जाएंगी? उत्तर है कि आत्मा के साथ केवल सूक्ष्म शरीर जाता है, जिसमें संस्कार एवं कारण शरीर विद्यमान रहता है। वह शक्तियां जो कि कर्म में परिवर्तन न हुई हों और वह संस्कार जिनका फल जीवात्मा को भौतिक जगत में प्राप्त न हुआ हो वह साथ जाते हैं। मन, बुद्धि, चित्त व अहम् तत्व से हमारा सूक्ष्म शरीर बना होता है व संस्कार अमुक्त रूप में चित्त में अवस्थित रहते हैं व शक्तियां सामूहिक रुप से विद्यमान रहती हैं। शक्तियां जिन्हें हम विचार शक्ति के रुप में समझते हैं स्वाभाविक रूप से कार्य करती रहती हैं और जैसे ही इसमें बुद्धि का समावेश हो जाता है ये नैमितिक शक्ति का रूप धारण कर लेती हैं।

कर्म करते ही शक्तियां क्षीण हो जाती है और फल प्राप्त करते ही संस्कार क्षीण हो जाते हैं। तो फिर शाश्यत् क्या है? ईश्वर के ध्यान के द्वारा शक्तियों का Recharge होते रहना चाहिए (जैसे कार की बैटरी रिचार्ज होती रहती है) व शुभ कामों द्वारा संस्कारों की उत्पत्ति होती रहनी चाहिए। लेकिन कैसी शक्तियां व कैसे संस्कार हम चाहेंगे जो जीवात्मा के साथ चलें। सकारात्मक शक्तियां व जीवन्त शुभ व उत्साह एवं प्रसन्नता से ओतप्रोत संस्कार होने चाहिए। नहीं तो मनुष्य का दूसरा जीवन बहुत ही साधारण कोटी का व्यतित होता है।

उपर्युक्त विचार मैंने सीधे चित्त में उतरकर उनका समीकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। विषय बहुत ही जटिल है जिसे सरल बनाने का प्रयास किया है।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
मंत्री, आर्य समाज वाशी

प्रवेश सूचना

आर्ष कन्या गुरुकुल, दाधिया, राजस्थान राज्य के अलवर जिले में साबी नदी के किनारे स्थित एक रमणीक संस्था है। यह गुरूकुल दिल्ली से १०० किलोमीट एवं जयपुर से १५० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है तथा वर्तमान में कन्याओं की शिक्षा का सर्वोत्तम केन्द्र है। अत: आपसे निवेदन है कि आप गुरूकुल में अधिक से अधिक संख्या में कन्याओं को प्रवेश दिलाकर आर्ष सिद्धांतों के प्रचार में योगदान दें।

सम्पर्क करे :

आचार्या प्रेम लता, आर्ष कन्या गुरूकुल,
दाधिया जिला अलवर राजस्थान-३०१४०१,
फोन नं. ०१४९५-२७०५०३
मो. : ०९४१६७४७३०८

"जीवन में रंगों का महत्व"

ईश्वर ने सम्पूर्ण प्रकृति रंगीन बनाई है। इस प्रकृति में उसने नाना प्रकार के रंग भरे हैं। लाल, हरे, नीले, पीले, नारंगी इत्यादि। गुलाब का फूल लाल रंग का बनाया, गेंदे के फूल में नारंगी रंग भर दिया। कमल को श्वेत बनाया, तो पत्तों को हरा कर दिया। फूल नहीं नाना प्रकार के फलों को भी नाना प्रकार के रंग दिए हैं। धरती पर बिचरने वाले प्रत्येक जीव जन्तु, पशु पक्षियों को अलग अलग रंग से नवाजा है। अलग अलग जगह की मिट्टी भी अलग अलग रंग से रंगी है। आसमाँ को नीला रंग दिया है, तो बादलों को सफेद, सूर्य को लाल बनाया है तो चद्रमा को श्वेत। कल्पना करो यदि समस्त सृष्टि-मात्र श्वेत होती अर्थात रंगहीन होती तो कैसी लगती, कितनी नीरस व अजीब होती।

इन नाना प्रकार के रंगों का हमारे जीवन में अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अलग अलग रंगों का अलग अलग प्रभाव। तीन माह का छोटा सा बच्चा जिसे रंगों का कोई ज्ञान नहीं है, फिर भी वह लाल, हरे, नीले, पीले रंगों को देखकर कितना खुश होता है। उसे खिलोनों की शक्ल सूरत से इतना आकर्षण नहीं होता है जितना उसके रंगों से। यदि वही खिलौने काले या मटमैले रंग के हों तो वह इतना प्रसन्न नहीं होगा। इसी प्रकार हम जो वस्त्र पहनते हैं उनमें भी रंगों का विशेष ध्यान रखते हैं। एक नव विवाहित वधू यदि काले व ग्रे कलर के परिधान पहनती है तो देखने वाले अपनी सुन्दर प्रतिक्रिया नहीं दे पाते हैं, इसी के विपरित यदि कोई वयोवृद्ध महिला लाल आदि चटक मटक कपड़े पहन कर घूमती है तो लोग व्यग्यं भी कसने लगते हैं। अर्थात आपके जीवन का, जीवन के पडाव का, आपके क्रियाकलाप का रंगों से गहरा सम्बन्ध है।

हमारे मन के भाव व तथा हमारे व्यवहार भी रंगों से बहुत प्रभावित होते हैं। या यूं कहें जैसे हम रंगों का प्रयोग करते हैं, उपयोग करते हैं वैसे ही हमारे भाव बनते हैं, जैसे भाव वैसी वृत्तियां, जैसी वृत्तियां वैसे ही हमारे आचार, जैसे आचार वैसे ही व्यवहार।

सृष्टि के समस्त रंगों को मुख्यता दो भागों में बाँट सकते हैं, प्रथम शुक्ल अथवा शुभ्र रंग, द्वितीय कृष्ण अथवा अशुभ रंग। सफेद, लाल, हरे, नीले, पीले आदि रंग शुक्ल रंगों के अन्तर्गत आते हैं तथा काले, ग्रे, भूरे, मटमैले रंग कृष्ण रंगों की श्रेणी में आते हैं। शुक्ल रंगों को शुभ कहा जाता है तथा कृष्ण रंगों को अशुभ। शुक्ल रंगों का प्रयोग मनुष्य को प्रसन्नता, हर्ष उल्लास, शान्ति, सन्तोष आदि भावनाएं प्रदान करता है तथा कृष्ण रंग से व्यक्ति हतोत्साहित, निराश, उदास, खिन्न हो जाता है। रूस के एक विद्यालय के बच्चे बहुत उदण्डी हो रहे थे। शिक्षकों की अनेक कोशिशों के बावजूद, उनकी शरारतों में कोई कमी नहीं आई। अन्त में वहां मनो वैज्ञानिकों को बुलाया गया। उन्होंने पूरे विद्यालय का भ्रमण किया और गहरी जाचं के बाद उन्होंने बताया कि विद्यालय की दीवारों व पर्दों के रंग लाल है यही उनकी उदण्डता का मूल कारण है। उन्होंने सुझाव दिया कि दीवारो के रंग सफेद कर दो तथा पर्दे गुलाबी रंग के लगा दो। रंगों में परिवर्तन करने के कुछ माह बाद पाया गया कि उस विद्यालय के विधार्थी शान्त, धीर व आज्ञाकारी हो गये।

रंग चिकित्सा- आज के वैज्ञानिकों एवं मनो वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के मन को, अवचेतन मन को तथा मस्तिष्क को रंग अत्याधिक प्रभावित करते हैं।

रंगों के ध्यान से अथवा रंग चिकित्सा से हमारे भाव निर्मल बनते हैं और जब भाव निर्मल होते हैं तब विचार से व्यवहार निर्मल होते हैं। इसी आधार पर रंग- चिकित्सा पद्धति प्रारम्भ हुई है।

रंग चिकित्सा में पानी से भरी भिन्न भिन्न रंगों वाली बोतलों को धूप मे रखकर रोगी को पिलाया जाता है और उसका उपचार किया जाता है। भिन्न भिन्न बीमारियों के उपचार के लिए भिन्न भिन्न रंग।

प्रिमेच्योर बेबी को भी डाक्टर लोग कांच के बाक्स में रखकर अल्ट्रा वायलेट किरणों से कुछ दिनों तक इलाज करते हैं। उसे बैंगनी रंग का प्रकाश दिया है जिससे उसका इम्यूनिटी सिस्टम मजबूत होता है और वह स्वस्थ होने लगता है।

योगियों की भांति शरीर वैज्ञानिक भी हमारे शरीर में शक्ति केद्रों को मानते हैं जिसे वे एण्डोक्राइन सिस्टम कहते हैं। अलग अलग चक्र अलग अलग रंग से प्रभावित होते हैं। या यूं कहे कि अलग अलग रंग अलग अलग चक्रों को स्वस्थ करने में सक्षम होते हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने इस विज्ञान का पता बहुत पहले ही लगा लिया था।

अमेरिकन इन्स्टीच्यूट आफ बॉयो सोशल रिसर्च के निर्देशक प्रो. ऐलगजेन्डर कि मान्यता है कि रंग की विद्युतचुम्बकीय ऊर्जा किसी अज्ञात रूप से हमारी पिच्यूटरी व पिनीयल ग्लैण्डस् (चक्र) को एवं मस्तिष्क के हाइपोथेलयस केन्द्र को प्रभावित करती है।

विभिन्न रंगों के गुण-दोष

लाल रंग-यह अग्नि तत्व है। यह रक्त व नाडी मण्डल को सक्रिय बनाता है। यह रंग मस्तिक के दाएं भाग को सक्रिय रखता है। इस रंग के ध्यान से प्रतिरोधक शक्ति बढती है। पीला रंग - यह रंग बुद्धि एवं दर्शन का रंग है। इस रंग से मानसिक कमजोरी व उदासीनता दूर होती है। यह शारीरिक संवर्धन में सहायक होता है। नारंगी रंग - यह थॉयराइड ग्लैण्डस् को सक्रिय बनाता है। यह फुस्फुस, पेनक्रियास, पित्त को गति देता है। नीला रंग-इसका मुख्य प्रभाव रक्त पर होता है। यह रक्त के लिए टॉनिक का काम करता है। जामुनी रंग-यह पैराथाइराइड ग्लैंण्डस् को सक्रिय करता है, रक्त को शुद्ध करता है, श्वास को मन्द करता है।

ध्यान पद्धति में हम अपने शरीर के अन्दर स्थित भिन्न भिन्न केन्द्रों पर अलग अलग रंगों का ध्यान करते हैं इन रंगों के ध्यान से वे कन्द्र सक्रिय होते हैं। उनके द्वारा हो रहे असंतुलित स्राव संतुलित हो जाते हैं।

शक्ति केन्द्र पर लाल रंग, आनन्द केन्द्र पर हरा रंग, विशुद्धि केन्द्र पर नीला रंग, दर्शन केन्द्र पर लाल रंग, ज्योति केन्द्र पर सफेद रंग तथा

सहस्रार चक्र पर पीले रंग का ध्यान किया जाता है। जैसे जैसे हमारा ध्यान परिपक्व होता जाता है वैसे वैसे हमारी व्याधियां समाप्त होती चली जाती है। इससे बड़ी बात-हमारी आदतों में आमूलचूल परिवर्तन होता चला जाता है।

आज हम मकानों पर लाखों रूपये खर्च कर देते हैं किन्तु फिर भी किसी किसी घर में प्रवेश करते समय प्रसन्नता की अनुभूति नहीं होती है कभी कभी तो अतिथि को घबराहट सी होने लगती है। इसका कारण उस घर में प्रयोग किए गये गलत रंग। ये कृष्ण रंग उस घरे मं लगातर मलिन विकिरण छोडते रहते हैं और घर का वातावरण उदासी भरा बन जाता है।

अत: यदि हम प्रसन्नता व आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं तो हमे रंगों के प्रति सजग होना पडेगा। वस्त्र, आभूषण, घर सभी के रंग उदात्त होने चाहिए तभी हमारी भावनाएं भी उदात्त बनती चली जाएंगी। भावनाओं के शुद्ध होने के फलस्वरूप हमारे व्यवहार में उचित परिवर्तन आ जाता है और व्यक्ति मनुष्य से देवत्व की श्रेणी में पहुंच जाता है।

श्रीमती रमा आर्या

महामन्त्री-पतंजलि योग समिती सान्ताक्रुझ मुंबई

पृष्ठ १५ से चालू....

मीमांसा के मत में ईश्वर तथा परमात्मा दो हैं या एक? यह कहना कठिन है क्योंकि इनका विचार शास्त्रों में नहीं। शायद **मीमांसकों** को पहले ईश्वरास्तित्व की आवश्यकता नहीं थी परन्तु अब मीमांसक भी ईश्वर को मानते हैं क्यों कि अर्थ संग्रह में मंगलाचरण से इसकी सिद्धि होती है-

वासुदेव रमाकान्तं नत्वा लौगाक्षिभास्कर:। कुरूते जैमिनीनय प्रवेशयक्षीनग्रहम्।।

५ **वेदान्तानुसार-** अद्वैतदर्शनानुसार समस्त अज्ञान समष्टि है यह उत्कृष्ट उपाधि है अत: उसमें विशुद्ध सत्वगुण का प्रधान्य रहता है। इस उपाधि से घिरा हुआ चैतन्य आत्मा ही ईश्वर है।

इयं समष्टिरूत्कृष्टोपाधितया विशुद्धसत्वप्रधाना। एतदुपहितं चैतन्य सर्वज्ञत्वसर्वेश्वर त्वसर्वनियन्तृत्वादिगुणकव्यक्त मन्तयांमी जगत् कारणमीश्वर इति च व्यपदिश्यते संकलज्ञानावमासेत्वात् य:सवज्ञ: सर्ववित् इति श्रुति:।

स्थावर जंगम समस्त प्रपञ्च का साक्षी होने तथा समस्त अज्ञानों को प्रकाशित करने के कारण वह ईश्वर सर्वज्ञ है। सभी जीवों को तदकर्मानुसार फल देने के कारण वह सर्वेश्वर है। जीवों को स्वकर्मों में प्रेरणा देने के कारण वह सर्व नियन्ता है प्रमाणों से अप्रमेय है अत: अव्यक्त है। समस्त चराचर विश्व का विवर्त्तमान रूप में अधिष्ठान होने के कारण यह जगत का भी है। यह लीला प्रयोजन हीन है- लोकवत्रुलीला कैवल्यम्।

सर्वदर्शन स्थूल दृष्टि पात करने पर यह स्पष्ट है कि प्रत्येक ने किसी न किसी रूप में ईश्वर को माना है यथा, कपिलानुयायी आदि विद्वान् सिद्ध के रूप में, पातज्जलि अनुयायी क्लेश कर्म से रहित आदि के रूप में, न्यायिक सर्वगुण सम्पन्न पुरुष के रूप में, चार्वाक लोकव्यवहारसिद्ध के रूप में, मीमांसक उपास्य देव के रूप में शैव शिव वैष्णव पुरुषोत्तम, पौराणिक पितामह के रूप में, ईश्वर को अवश्य मानते हैं।

गुरुकुल आश्रम आमसेना का ४८वां वार्षिकोत्सव सम्पन्न।

ओड़िशा में आर्यो के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल गुरुकुल आश्रम आमसेना के ४८वें वार्षिक महोत्सव पर दो होनहार युवक ब्रह्मचारी अंकित कुमार एवं ब्रह्मचारी महीधर आर्य ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर अपना जीवन देश धर्म के लिए समर्पित किया तथा श्री स्वर्गीय चौ. मित्रसेन जी आर्य की पुण्य स्मृति में पूज्य स्वामी सुधानन्द जी सरस्वती, पूज्य डॉ. ब्रह्ममुनि जी वानप्रस्थी (महाराष्ट्र), महात्मा चैतन्यमुनि जी (हिमाचल प्रदेश) का सम्मान २१ हजार रु. की राशि, शॉल, श्रीफल एवं अभिनन्दन पत्र के साथ किया गया। इसी क्रम में ३० वानप्रस्थियों एवं १६ आर्य वृद्धों तथा गुरुकुल में दीक्षित ब्रह्मचारियों के माता-पिता का सम्मान भी किया गया।

महोत्सव का शुभारम्भ अथर्ववेद परायण महायज्ञ तथा ओ३म् पताकोत्तलन के साथ हुआ। खरियार रोड नगर में भव्य शोभायात्रा भी निकाली गई। इसी अवसर पर आर्य जगत के उच्चकोटि के विद्वानों के उद्बोधन के साथ महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर केन्द्रीय ग्रामीण विकास राज्यमंत्री श्री सुदर्शन भगत जी एवं स्थानीय विधायक श्री. बसंत भाई पण्डा जी भी महोत्सव में जनता को सम्बोधित करने के लिए पधारे थे।

प्रेषक

डॉ. कुञ्जदेव मनीषी

सूचना

निवेदन है कि आर्ष गुरूकुल महाविद्यालय, आबूपर्वत में वि.स. २०४७ (सन् १९९०) को विधिवत् रुप से विद्याध्ययन-अध्यापन प्रारंभ किया गया था। इस प्रकार से वि.स. २०७२ (सन् २०१५) को गुरुकुल में विद्याध्ययन-अध्यापन के पच्चीस वर्ष पूर्ण हो रहे हैं।

अत: इस वर्ष दिनांक २९, ३०, ३१ मई को होने वाले वार्षिक उत्सव को गुरूकुल के रजत जयंती वर्ष के रूप में मनाया जायेगा। इस अवसर पर गुरुकुल से विद्याध्ययन कर चुके सभी स्नातकों का परिचय करवाया जायेगा। भविष्य की योजनाओं के विषय में जानकारी दी जायेगी।

गुरुकुल में पंचमी कक्षा उत्तीर्ण १० से ११ वर्ष आयु के स्वस्थ एवं मेघावी छात्रों को प्रवेश दिया जाता है, समस्त शिक्षा नि:शुल्कहै।

निवेदक

स्वामी धर्मानन्द

डी.ए.वी. कालेज के संस्थापक महात्मा हंसराज का मूल उद्देश्य क्या था

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के परम शिष्य महात्मा हंसराज जी ने अखण्ड भारत किन्तु पराधीन लाहौर में १जून १८८६ को डी. ए.वी. स्कूल की स्थापना की थी। लाहौर पंजाब की राजधानी थी। कुछ वर्षों बाद यह स्कूल कालेज बन गया। १९४७ में डी.ए.वी कालेज के छात्रों की जनसंख्या किसी भी विश्वविद्यालय से कम नहीं थी, इसका प्रमुख श्रेय महात्मा हंसराज को जाता है। वह जीवन पर्यन्त डी.ए.वी. कालेज के प्रधानाचार्य रहे, किन्तु वेतन नहीं लिया।

महात्मा हंसराज जी का जन्म १९ अप्रैल सन् १८६४ को बजवाडा ग्राम होशियारपुर में हुआ था। बचपन से कुशाग्र बुद्धि के थे, प्रतिभाशाली थे, परिवार ने मिशन स्कूल लाहौर में भर्ती कराया और विपरीत परिस्थितियों के होते हुए मेधावी हंसराज ने बी.ए. द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्ही दिनों लाहौर में महर्षि दयानन्द सरस्तवी जी का आगमन हुआ और उनके प्रवचन सुनने हंसराज जी जाया करते थे। एक दिन प्रवचन का विषय था उत्तम मानव में क्या क्या गुण होने चाहिए। महर्षि जी ने प्रवचन में कहा कि छः गुण धारण करने से मानव उत्तम हो सकता है।

१. पठन-पाठन, २. उत्तम स्वभाव, ३.सत्य बोलने का व्रत, ४. अभिमान से रहित, ५. संसार के कष्ट दूर करने को हमेशा तत्पर रहना, ६. परोपकार के कार्यो में संलग्न रहना। इन गुणों से मनुष्य का जीवन सफल होता है। उसी दिन से हंसराज के मन में इन प्रवचनों का गहरा प्रभाव पडा और निश्चय किया कि मैं आदर्श मानव बनूंगा।

३० अक्टूबर १८२३ को महर्षि दयानन्द जी दिवंगत (बलिदान) हुए। उनकी स्मृति में वरिष्ठ आर्यो ने सर्व श्री हंसराज जी मुनिवर पं. गुरुदत्त जी, लाल लाजपत राय, राजा नरेन्द्रनाथ, श्री द्वारिकादास आदि महानुभावों ने डी.ए.वी. (दयानन्द ऐंग्लो विद्यालय) खोलने का सर्वसम्मति से निश्चय किया। धनाभाव के कारण डी.ए.वी. स्कूल चलाने में कठिनाई आ रही है। श्री हंसराज जी ने अपने बडे भाई लाल मुल्कराज जी के सम्मुख अपने विचार रखे कि मैं अपना जीवन आर्य समाज को देना चाहता हूँ। बडे भाई ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहा अपने वेतन का आधा ४० रुपये तुमको देता हूँ इससे प्रेरित होकर ३ नवमबर १८८५ को लाहौर आर्य समाज के अन्तरंग सभा में सूचित किया कि मैं आजीवन अवैतनिक डी.ए.वी. स्कूल को अपनी सेवाएं देना चाहता हूँ।

१ जून १८८६ को लाहौर में डी.ए.वी. स्कूल इनके प्रयास से ही डी.ए.वी. कालेज बन गया। उसके प्रधानाध्यापक के रूप में इन्होंने अपनी सेवायें देनी प्रारम्भ की और डी.ए.वी. कालेज को बहुत ऊँचा उठाया। विदेशी भी उनकी प्रतिभा के सामने नतमस्तक हो गये और सरकार से अनुदान लिये बिना दो वर्षो में महाविद्यालय में बदल दिया।

महात्मा हंसराज जी की प्रेरणा से अनेक युवक सादा जीवन खादी पहनावा के वेश में अपनी सेवाएं देने लगे। श्री हंसराज जी ने डी.ए.वी. कालेज के प्रिन्सिपल एवं आर्य समाज के प्रधान के रूप में ही नहीं वरन एक सच्चे समाज सुधारक और कर्मवीर के रूप में सेवाएं दी जो सदैव स्मरणीय रहेंगी।

महात्मा हंसराज जी १८९४ को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रथम प्रधान पद पर सुशोभित किया गया। १९२२ मे लाहौर में महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। अधिक परिश्रम के कारण उनको पेट के रोग ने घेर लिया। उन्होंने महात्मा आनन्द स्वामी को प्रधान पद सौंप दिया। २० दिन की गम्भीर बीमारी के कारण १५ नवम्बर १९३८ को ७४ वर्ष की आयु में यह वीर पुरुष सदैव के लिए चिरनिद्रा में सो गया।

महात्मा जी के परम शिष्य सिकन्दर हयात जो कि विभाजन से पूर्व पंजाब के मुख्यमन्त्री थे, महात्मा हंसराज जी के देहावसान पर शोक में मुस्लिम लीग के विरोध के बावजूद असैम्बली को स्थगित कर दिया और कहा आज हम अनाथ हो गये हैं। कहा महात्मा जी ने सारा जीवन देश सेवा और परोपकार में बिता दिया।

दयानन्द ऐंग्लों विद्यालय का मुख्य उद्देश्य था कि पराधीन भारत में लार्ड मैकाले ने भारत की शिक्षा व संस्कृति को पाश्चात्य में बदल दिया था और प्रत्येक शिक्षा विद्यालयों में परोक्ष व अपरोक्ष रूप से ईसाई धर्म का प्रचार होने लगा था, भारत के गुरूकुलों की स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी जो इसका मुह तोड उत्तर दे सके। यह कार्य डी.ए.वी. कालेज में होने लगा और हिन्दी संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी शिक्षा देकर देश भक्त युवकों को मुंह तोड उत्तर देने के लिए तैयार करने लगे। फलस्वरूप डी.ए.वी. कालेजों से राष्ट्र भक्त युवक युवतियाँ बनने लगे और स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए तैयार रहने लगे। अंग्रेज सरकार ने अपने गर्वनरों को आदेश दे रखा था कि दोनो शिक्षा विद्यालयों पर कड़ी नजर रखी जाये।

महर्षि दयानन्द जी द्वारा रचित आर्य समाज के क्रान्तिकारी संघठनों द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की चिन्गारी निकलने लगी। फलस्वरूप अस्सी प्रतिशत आर्य समाजियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपने गरम-गरम रक्त से बलिदान देकर भारत मां का तिलक किया था।

आज आवश्यकता है महात्मा हंसराज जी के उद्देश्यों को पुनः कालेजों में प्रारम्भ करने की। प्रार्थना सभा में आठ प्रार्थना मंत्र व समय समय पर यज्ञ करना तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रन्थों को पाठ्यक्रम में शामिल करना आदि आदि। आचार्यो व विद्यार्थियों को अपनी सकारात्मक सोच बनानी होगी तभी शिक्षा का मूल उद्देश्य सफल होगा।

भारत के समस्त जागरूक विद्वान आर्यो को डी.ए.वी. कालेजों की वर्तमान स्थिति और महात्मा हंसराज जी के मूल उद्देश्यों को ध्यान में रखकर समीक्षा करके, डी.ए.वी. कालेजों की दशा व दिशा बदलने में आगे आना होगा।

विशेष निवेदन : सम्पूर्ण आर्य नेतृत्व व सभाओं से प्रार्थना है कि सम्पूर्ण डी.ए.वी. कालेजों में पूर्ण रुप से आर्य सिद्धान्तों के प्रतिपादन करवाने में आगे आएं।

पं. उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक
मो. : ९४११५ १२०१९
गढ़निवास मोहकमपुर, देहरादून
उत्तराखण्ड

भारतीय महीनों के नाम और उनका औचित्य (२)

देवेन्द्र प्रसाद शास्त्री 'सावित्रेय' रांची-१

'श्रावण' का अर्थ ही है :-

'गुरू से शिक्षा ग्रहण करना, श्रुतिवाक्यों का सुनना' उसी की शिक्षा लेने शिष्य गुरू के पास जाता था। परमात्मा सर्वश्रेष्ठ और अजर अमर गुरु हैं। उसकी शिक्षा वेदादि धर्म शास्त्रों में संगृहीत कही गई है और उन्ही वैदिक ऋचाओं को मनुष्य के अन्तर्मन भी संमिहित बतलाया गया है। समय-समय पर महर्षियों ने वेदमन्त्रों का साक्षात्कार कर उन्हें और अपौरुषेय घोषित किया। उनसे इतर लोगों की भी मान्यता ऐसी ही 'श्रुति' के प्रति रही। अस्तु।

उसी परमात्मा की दिव्य विभूति के रूप में गुरु भी स्वीकारे गये हैं। उस 'श्रुति' को गुरू से शिष्य सुनकर ही दीर्घकाल तक उन मन्त्रों को स्मरण रखने की परम्परा जारी रही। कालक्रम से मनुष्य की (स्मृति) स्मरण-शक्ति का ह्रास होने लगा। 'द्वापर' युग के अन्त में जब महर्षि वेदव्यास ने मानव सन्तति की स्मृति का ह्रास होते हुए अनुभव किया तब उस समय के विभिन्न ऋषियों की उन्होंने सभा बुलायी और 'श्रुतिज्ञान' को लिपिबद्ध कर दिया। उसी से श्रुति-ज्ञान' की परम्परा जारी रही। वही श्रृति-ज्ञान' कालान्तर में 'वेद-संहिता' कहलायी, जिसका गहन-चिन्तन और मनन करके आज भी दु:खी व्यक्ति दुखों से मुक्त हो जाते हैं। आज भी वेद की महत्ता बनी हुई है, क्योंकि यही एक वैसा पवित्र ग्रन्थ है- जिसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों पक्षों पर खुलकर सूत्ररूप में व्यवहारिक चर्चा की गई है। सुपात्र शिष्य और श्रेष्ठ गुरू की जरूरत सदा रही। इसी की स्मृति ''श्रावण-मास'' करा कर प्रतिवर्ष हमें उपदेश दे रहा है- 'चेतन और विकासक शक्ति महान बने रहकर दु:खों से आच्छादित शक्तियों पर श्रावण मास की वर्षा है।' सबों पर बरस कर सूचिता (पवित्रता) को बनाये रखती है। स्वयं पवित्र करा कर सब को पवित्र करती रहती है, अन्यथा चेतना, विकास और सृष्टि की महानता अपवित्र होकर अवरूद्ध हो जाती। अत: व्यक्ति भी तदवत् बने। इस ''श्रावण मास'' की सफलता पर ''भाद्रमास'' प्रकाश डालता है।

भाद्रपद का अर्थ है- ''आनन्द, प्रसन्नता की स्थिति अर्थात् वह ज्ञान जो हमें परम आनन्द की स्थिति तक पहुंचा देने में पग बढ़वा दे। साधक व्यक्ति आनन्द की स्थिति प्राप्त करने के लिए तपरूपी प्रयत्न करता है और साधना के बल से वह अपने लक्ष्य और उद्देश्य की प्राप्ति भी कर लेता है। वेद में इस मास को ''नमस्य मास'' कहा गया है। 'भादो' माह की पूर्णिमा ''भद्रा'' नक्षत्र में होती है।

सावन-भादों के महीने में आसमान चेतन, विकासशील और महानता के मेघो से घिरे रहते हैं। मूसलाधार सुख वर्धक वृष्टि होती रहती है, बिजली की चमक चारों ओर चमकती रहती है। फलत: पृथ्वी पर चारों और हरियाली छायी रहती है। मानो भादो और भाद्रपद नक्षत्र कह रहे हो:-

हे मनुष्य ! यदि तुम प्रसन्न और सम्पन्न सज्जन बनना चाहते हो, तो मेरे जैसा कल्याणकारी पद बढ़ाओ। धीर, वीर, गम्भीर और आत्मज्ञ, परमात्मदर्शी बनकर प्राप्त किये हुए सद्गुणों की वृष्टि करो, तभी अभाव अज्ञान और अन्याय से मुक्त होकर सुखी हो सकते हो।''

'भद्र' नक्षत्र और 'भाद्रपद' की पूर्ण व्याख्या ''आश्विन'' मास में की गई है। ''आश्विन'' शब्द अश् धातु से बना है, जिसका अर्थ है- व्याप्ति और संघात'। यह पद हमें बताता है कि ईश्यर सब जगह व्याप्त है, वही सब में समाया हुआ है। मनुष्य स्वकर्मानुसार उसी के अधीनसथ रहकर नियत समय तक अन्नादि भोगों को भोगता हे, और उसी महान-तत्व में विलीन हो जाता है। इस मास की पूर्णिमा 'आश्विनी' नक्षत्र में होती है। ये हमें निर्देश करते है- हम उस सर्वव्यापी शरीरस्थ परमात्मा का साक्षात्कार कर जीवन को मंगलमय बनायें। बहूतायत से अन्नोत्पादन करें। अपनी अनन्त इच्छाओं पर विजय प्राप्त करें। शरीर को सुन्दर बनावे। इनमें किसे उपास्य बनायें या छोड़ दे? हमारा शरीर, क्या है? इसका जवाब ''कार्तिक'' देता है।

''कार्तिक'' पद का अर्थ है- ''चमड़ा बाहरी आवरण'' यह पद हमें बतलाता है कि शरीर उस अविनाशी आत्मा का बाहरी आवरण है, पोशाक है। कार्तिक मास की पूर्णिमा ''कृतिका'' नक्षत्र में चन्द्रमा के भ्रमण करते हुए आने से होता है। हम शरीर को सुन्दरता से सजाने के बाद ऊरर्जस्वी भी बनाये, बलशाली मी बने, परन्तु शरीर धीर आत्मा मन दोनों में उपास्य किसे बनावें, किसकी खोज करें? इसका जबाब ''मार्गशीर्ष'' माह में उपलब्ध है। शरीर सुन्दर और बलशाली बनाने के बाद मन और आत्मा की ओर भी बढ़ाने की प्रेरणा ''मार्गशीर्ष'' देता है।

''मार्गशीर्ष'' में 'मार्ग' और 'शीर्ष' दो शब्दों का समन्वय है। 'मार्ग' का प्रचलित अर्थ है- 'रास्ता और विशेष अर्थ है- खोज, सहनशीलता, 'शीर्ष' का तात्पर्य मुख्य, मस्तिष्क, सर्वोत्कृष्ट केन्द्र से है। जो मुख्य हो, शीर्षस्थानीय हो उसी-की खोज करनी चाहिए, तभी सहनशीलता की प्राप्ति होती है।

वह खोज तभी पूर्ण होगी, जब शरीर स्वस्थ और निरोगी रहेगा। निरोगी शरीर ही बल प्राप्त कर सहनशील बनता है और क्षमाशील बनकर उस खोज को पूरा करने योग्य हो पाता है। वेदों में उस सर्वोत्कृष्ट केन्द्र तक पहुँचने के लिये मुख्य रूप से दो मार्ग बतलाये गये हैं। उन्हीं रास्तों से अनेक राहे धार्मिक क्षेत्र में फूट पड़ी है। एक मार्ग कों 'श्रेय मार्ग'' और दूसरे (मार्ग) को ''प्रेयमार्ग'' कहते है। परमात्मा को प्राप्त करने के उद्देश्य से 'श्रेयमार्ग' पर योगी, वैरागी और यति मुनि चलते आये हैं। यह मार्ग कठिन है। इस मार्ग पर वही व्यक्ति चल सकते हैं, जिनमें लौकिक प्रलोभन न हो। लोकैषणा, वित्तैषणा की इच्छाओं से निवृत्त होकर ऊपर उठ चुके हों और संन्यासधर्म के योग्य हो गये हों, आदि।

'प्रेयमार्ग' पर उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गृहस्थ व्यक्ति भी चलते आये हैं। यह राह सम्पदाओं से परिपूर्ण और आकर्षक तथा विपत्तियों से भरा हुआ कहा गया है। इस राह पर निष्काम, योगी बनकर गृहस्थ भी निर्लिप्त भाव से कर्म करते हुए बढ़ते आये हैं। इसके राही सांसारिक माया की और आकृष्ट (प्रवृत्त) होकर अपनी कामनाओं की तृप्ति करते हुए, मातृ-पितृ-ऋण, देव-ऋण ओर ऋषि-ऋण से उऋण होते हुए सच्चिदानन्द की और बढ़ते रहे हैं फिर अन्त में सांसारिक पदार्थो से विरक्त होकर प्रभु भक्त बन नये है। वे लोग संसार में हंसकी तरह चले है और भोगों से निर्लिप्त रहे। ऐसे प्रभुभक्त पथिकों से भारत का इतिहास भरा पड़ा है।

(क्रमश:)

बंधन नहीं अनुशासन

विजयकुमारी

एक समाचार- 'घोड़ा बे लगाम हो गया।'

१५ जून! एक घोड़ा सहसा अपने स्वामी के हाथ से छूट गया। उसने लगाम तोड़ दी और बेकाबू होकर सड़क पर अंधाधुन्ध भाग खड़ा हुआ। वह एक मोटर से टकराया। उसने तीन साइकल-सवारों को गड्ढे में धकेल दिया, एक खोमचे वाले के छोले सड़क पर लुढ़का दिए, पाँच राहगीरों को कुचल दिया, जिससे उन्हें गहरी चोटें आई। अन्त में पुलिस के जवानों ने उसे पकडकर रस्सों से बाँध दिया।

काश ! लगाम न टूटती और न घोड़ा काबू से बाहर होकर इतना उत्पात मचाता।

दूसरा समाचार- 'नदी ने बाँध तोड़ दिया।'

१६ जून ! ब्रह्मपुत्र की धारा दोनों किनारों और बाँध को भी तोड़कर आसपास के क्षेत्र में फैल गई। नदी का पानी खेतों, बस्तियों और मैदानों में घुस गया। बाढ़ के कारण असम के तीस हजार लोग बेघर हो गए। दो लाख एकड़ भूमि में फसल को हानि पहुँची। एक हजार पशु तेज धारा में बह गए। मनुष्यों के भी डूब जाने की आशंका है।

काश ! नदी का बांध न टूटता और उसका पानी बेकाबू होकर इतने व्यापक नाश का कारण न बनता।

१७ जून ! आज जब रेलवे का एक टिकट निरीक्षक यात्रियों के टिकट जाँच रहा था तो यात्रियों के एक दल से उसकी झड़प हो गई। वे लोग बिना टिकट यात्रा कर रहे थे। टिकट निरीक्षक ने उनसे नियमानुसार टिकट लेने का अनुरोध किया तो उन्होंने नियम निभाने से साफ इन्कार कर दिया। उच्च अधिकारियों के कहने पर यात्रियों ने जानबूझकर आज्ञाओं का उल्लंघन करना आरम्भ कर दिया और रेलवे कर्मचारियों पर आक्रमण कर दिया। अगले स्टेशन पर पुलिस बुलाई गई तो यात्रियों ने उस पर भी पथराव किया। वे रेलवे कार्यालय में घुस गए और वहाँ उन्होने सामान को आग लगा दी। तीन व्यक्ति आग में बुरी तरह झुलस गए। स्टेशन मास्टर के कार्यालय का आधा भाग जल गया। छः कमरों की खिड़कियाँ, शीशे और दरवाजे नष्ट-भ्रष्ट हो गए। रेल के दो डिब्बों को भी भारी क्षति पहुँची। विवश होकर पुलिस को लाठी और आँसू गैस का प्रयोग करना पड़ा । पन्द्रह उपद्रवियों को गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया गया।

काश! यात्री लोग जानबूझकर अनुशासन भंग न करते तो राष्ट्रीय सम्पत्ति का नाश न होता!

युवको ! गिनती में ये तीन समाचार हैं, किन्तु इनका सार एक ही है-

अपनी सीमा में बँधकर चलने से लाभ होता है।

अपनी सीमाओं को तोड़कर बेकाबू होने से हानि होती है।

सीमा का ही दूसरा नाम नियम है। सीमा में बँधकर चलने का ही नाम अनुशासन है।

क्या सीमाओं का बन्धन केवल नदी-नाले आदि जड़ वस्तुओं और घोड़े, बैल आदि पशु-पक्षियों के लिए ही आवश्यक है? या हम मनुष्यों के लिए भी? सीमाओं का बन्धन मनुष्यों के लिए भी आवश्यक है। किन्तु अन्य वस्तुओं और मनुष्यों की सीमाओं में अन्तर है।

नदी-नालों के बाँध केवल ऊपरी और बाहरी होते हैं। वे चाहें या न चाहें, दूसरे लोग उन पर बलपूर्वक बाँध बना देते हैं। वे जबरदस्ती उसकी बेरोकटोक बहती पागल धारा के दाएँ-बाएँ कंकरीट की ऊँची पक्की दीवारों की रोक खड़ी कर देते है ताकि यदि वह सीमा बढ़ जाए तो उसकी बाढ़ जहाँ-तहाँ घुसकर उजाड़-उखाड़ न कर सके, अपितु उसका पानी हमारे वश में रहे। भाखड़ा बाँध और नगल बाँध आदि बन्धन इसी प्रकार के हैं।

ये बन्धन केवल बाहरी हैं, क्योंकि वे केवल बाहर के शरीर के लिए हैं। वे नदी-नालों के उत्पाती स्वभाव को नहीं बदल सकते। इसीलिए जब तक बन्धन हैं तब तक नदियाँ उनमें बँधकर चलती हैं। बाँध सौ वर्ष तक चलेगा तो धाराएँ भी तब तक सीमा में बँधकर चलती रहेंगी। किन्तु फिर, एक दिन बाँध में कहीं दरार आ जाए तो? नदी प्रलय मचा देगी। खेतों को डुबो देगी। नगरां और ग्रामों में जा घुसेगी। सैकड़ों मनुष्यों और हजारों पशुओं को बहा ले जाएगी। शोक कि सौ वर्ष तक भी नदी ने अपने-आप कुछ नहीं सीखा। न उसका बहाव बदला, न उसका स्वभाव। इसका अर्थ यह हुआ कि बाहरी दबाव कोई पक्का उपाय नही; क्योंकि जब तक दबाव रहा, दबकर चलते रहे। ज्यों ही दबाव हटा, बेकाबू हो गए। इसी प्रकार ऊपरी बन्धन भी टिकाऊ रोक नहीं लगा सकते।

ठीक यही दशा पशु-पशियों की भी है। घोड़े को रस्सी से बाँध दीजिए, लगाम से रोक लीजिए, चाबुक से पीटते रहिए-तो वह काबू में रहेगा, सीधा चलता रहेगा। तनिक-सी ढील मिली नहीं कि घोड़ा बीच सड़क में भड़का। इसी प्रकार सर्कस का शेर तभी तक भलामानुष है जब तक वह पिंजरे में बन्द है या जब तक रिंग मास्टर हण्टर लिए उसके सिर पर सवार है। जरा खुलने दीजिए पिंजरे का दरवाजा। तनिक हटने दीजिए चाबुक का पहरा। फिर देखिए, वह कितने दर्शकों को डराता है। कितनों को घायल करता और कितनों के पेट फाड़ता है।

अतः

सदा बचते रहिए-बिना बाँध की नदी से।

हमेशा दूर रहिए-बेलगाम जन्तुओं से।

क्योंकि ये भीतर से भले नहीं होते। ये स्वभाव से सीधे नहीं होते। ऊधम और तोड़-फोड़ इनकी नस-नाड़ियों में बसे हैं। बड़े से बड़ा बाहरी बन्धन भी इन्हें सुधार नहीं सकता।

मनुष्यों की बात इनसे अलग है। हम नदी-नालों से ऊँचे हैं, क्योंकि हम अपने लिए आप सोच सकते हैं। हम जीव-जन्तुओं से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि हममें भला बुरा समझने के लिए बुद्धि है। हमारे हाथ-पाँव बाहर चलते हैं, पर उनकी लगाम हमारे मन के हाथों में है जो हमारे भीतर विद्यमान है। इस प्रकार हम बाहर भी जाते हैं और भीतर भी। शरीर की शक्ति हमारे बाहर है तो मन और बुद्धि की शक्ति हमारे भीतर है। अतः हमें बाहरी बन्धन की अधिक आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि हम अपने-आप भीतरी बन्धन को स्वीकार करते हैं।

हमें नियम में रखने के लिए हमारे दाएँ-बाएँ बाँध बाँधने की आवश्यकता नहीं। हमें सीधा चलने के लिए हमारे मुँह में लगाम नहीं बाँधी जाती। हमें रोकने के लिए हमारे गले में रस्सियाँ नही डाली जाती। हमें पिंजरों

(शेष पृष्ठ १३ पर ....)

हम स्वयं अपने भाग्य विधाता हैं।

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रसिद्ध कहावत है कि हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं। इस वाक्य का क्या अर्थ है? भाग्य क्या है? हम इसे कैसे बनाते हैं? पिछले दो या तीन अध्याय पढ़ कर इतना तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि भाग्य क्या है।

यदि एक व्यक्ति धन कमाता है और कुछ न कुछ बचत करता रहता है, तो अन्त में जो कोश उसके पास बच रहता है, जो ज्ञान अन्त में उसके पास रहा वह उसका भाग्य है। यह स्पष्ट ही है कि किस प्रकार उसने इस भाग्य का निर्माण किया है।

ठीक इसी प्रकार हमारे कर्म, चाहे वह शारीरिक कर्म हों, वाचिक कर्म हों अथवा मानसिक कर्म हों इनसे हमारे संस्कार बनते हैं और वह संस्कार हमारे कारण शरीर में रहते हैं। यह कारण शरीर ही हमारा भाग्य है। इसका निर्माण हम स्वयं करते हैं। यह हमारी पूँजी है।

जो भी कार्य हम करते हैं, जैसे ही हम कार्य कर के हटते हैं, कर्म समाप्त हो जाता है। समाप्त होकर भी वह हमारे शरीर के अंगों के साथ-साथ हमारे मन, मस्तिष्क पर भी अपना प्रभाव छोड़ जाता है। उदाहरणार्थ जब हम पहली बार लिखना आरंभ करते हैं तब हम एक-एक शब्द को बहुत धीरे-धीरे लिखने का प्रयास करते हैं। दूसरी बार उतना प्रयास नहीं करना पड़ता। और जब हम लिखने के अभ्यस्त हो जाते हैं तो हम आश्चर्यजनक तेजी से लिखते चले जाते हैं। यह तेजी कैसे बनी? निरन्तर अभ्यास द्वारा! यह हमारी आदत बन गई। इससे नितांत भिन्न कोई अन्य आदत भी हम बना सकते थे। कर्मों को निरंतर अभ्यास से प्राप्त सत्व हैं हमारी आदतें। जब यह आदतें बहुत पुरानी हो जाती हैं तो यह अंतर्ज्ञान (Instinct) का रूप ले लेती हैं। जब हमने किसी कार्य को पहली बार किया तो उसके करने में भी हमें कुछ कष्ट हुआ। हमें और प्रयास करना पड़ा। जब वह कार्य हमारी आदत बन गया तो वह थोड़े ध्यान तथा प्रयत्न द्वारा सहज ही सम्पन्न होने लगा। जब आदत और पक्की हो गई तो उससे प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। जब हमारी प्रवृत्ति बन गई तो उस कार्य के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता वह कार्य अनायास होता प्रतीत होता है। आदत के स्तर तक हम कुछ गणना भी करते हैं। किन्तु जब प्रवृत्ति की स्थिति आई तब गणना का प्रश्न ही नहीं रहता। हम इसे स्वभावत: करते हैं। क्यों? क्योंकि हमारा कारण शरीर इसके रंग में रंगा जा चुका है। हमारे बाह्य शरीर को उसके स्वभाव का अनुकरण करना पड़ता है। यह जानना कुछ कठिन नहीं है कि हमारी प्रवृत्तियाँ हमारे स्थूल शरीर से संबद्ध नहीं है स्थूल शरीर द्वारा मात्र इनका प्रकटीकरण होता है।

इस प्रकार हम अपने कारण शरीर के निर्माता हैं। इन कारण शरीरों से ही पता चलता है कि हम अपने आत्म-विकास के किस स्तर पर अवस्थित हैं। वह हमारी अन्तर्तम प्रकृति का अर्थात् हमारा हमें दर्शन कराते हैं। यही हमारे पूरे जीवन का चरम बिंदु है। जो कुछ भी हमने विचार किया, बोला, और किया, सब कुछ इसी चरम बिंदु के निमित्त था। जिस प्रकार हमारे प्रत्येक व्यवसाय अथवा व्यापार से जो हमें उपलब्धि अथवा अर्जन होता है वही हमारे व्यापार का उद्देश्य है। इसी प्रकार प्रत्येक छोटा अथवा बड़ा विचार, शब्द अथवा कार्य हमारे अन्तर्तम अथवा कारण शरीर या हमारे भाग्य का निर्माण करता है।

जब हम मरते हैं, यह कारण शरीर ही हमारी संपूर्ण (चल) संपति होता है, हमारी यही पूँजी हमारे साथ रहती है। शेष सभी सम्बन्धी, धन, घर-बार, स्थूल शरीर सभी कुछ पीछे छूट जाता है। यह सब केवल साधन थे, लक्ष्य नहीं।

यह भाग्य अथवा कारण शरीर इस जीवन का अंत है और अगले जन्म का आरम्भ भी। यही रूपया है जो हमने पैसों के बदले खरीदा है। हम इसे साथ लेकर अगली यात्रा पर चल पड़ते हैं। यह रुपया हमारे नए जीवन के लिए पैसे देना आरम्भ कर देता है। यह हमारे कर्मों की उपलब्धि है। हमारा वर्तमान जीवन हमारे पूर्वकृत कर्मों का फल है और हमारा भावी जीवन हमारे वर्तमान कर्मों का फल होगा। इसी प्रकार कर्म और जीवन का चक्र चलता रहता है। ठीक उसी प्रकार जैसे गेहूँ का बीज जब बोया जाता है और पोषण पाकर परिपक्व हो जाता है तो अपने उत्तराधिकारियों को जन्म देता है। बीज से फल, फल से बीज का क्रम निरंतर चलता रहता है। इसका न आदि है न अन्त। यह शाश्वत है।

पृष्ठ १२ से चालू....

में नहीं बन्द किया जाता। फिर भी हम बुरा रास्ता देखकर रूक जाते हैं, क्योंकि हमारे हृदय में लगाम पड़ी है- नियम-पालन की । दूसरों को जबरदस्ती हम पर शासन करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि हम अपने पर आप शासन करते हैं- इसी का नाम अनुशासन है या आत्म-अनुशासन । इस प्रकार:

समझदार मनुष्यों के लिए-भीतरी अनुशासन है।

नासमझ पशुओं के लिए-बाहरी जंजीरों का बंधन है।

युवको! आओ, हम भी सच्चे मनुष्य बनें और अपने-आप अनुशासन में रहें। नियम का पालन हमारी अपनी आदत हो। सीमा में रहना पक्का स्वभाव हो।

अनुशासन जिन मनुष्यों के स्वभाव का अंग नहीं होता उन्हें बलपूर्वक काबू किया जाता है। उनके हाथों में हथकड़ियाँ बाँधी जाती हैं। उनके पैरों में बेड़ियाँ डाली जाती है और उन्हें सीखचों में बन्द किया जाता है, क्योंकि वे केवल बाहरी शक्ल से मनुष्य हैं, अक्ल से वे पशु हैं।

एक दिन संत तुकाराम देहू नामक ग्राम के एक मन्दिर में ईश्वर-भक्ति के भजन गा रहे थे। उनका भक्ति-गान सुनकर सुननेवाले भक्तजन मस्त होकर झूमने लगे। श्रोताओं में गवई बुवा नाम का एक संगीतज्ञ गवैया भी बैठा था। उसे संतजी का गाना बेसुरा प्रतीत हुआ। इससे अप्रसन्न होकर वह सत्संग में से उठकर चला गया और जाते-जाते सामने की दीवार पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिख गया- 'गीत गाना हो तो ताल-स्वर से गाना चाहिए।'

दूसरे दिन यह दिखाने के लिए कि अच्छा गाना कैसा होता है, गवई बुवा ने सत्संग में अपना कार्यक्रम रखवाया। उसने स्वर और ताल का खूब चमत्कार दिखाया, पर उसके गाने में भक्तों को रस नहीं आया। अत: मस्ती में झूमना तो दूर रहा, लोग ऊबकर जाने लगे। सत्संग समाप्त हुआ तो संत तुकाराम ने उठकर गवई बुवा ने जो पंक्ति कल लिखी थी उसी के नीचे लिख दिया- 'गीत गाना हो तो हृदय से गाना चाहिए, नहीं तो वह होंठों की कसरत मात्र कहलाएगी।'

इसी प्रकार मन से अनुशासन का पालन करना चाहिए नहीं तो वह कैदियों की सजा मात्र कहलाएगा।

५. यज्ञ-ध्वनि-प्रदूषण निवारक

संदीप आर्य

हवन प्रक्रियाके साथ-साथ मन्त्रों का उच्चारण क्यों किया जाता है इसका महर्षि ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' में उत्तर देते हुए लिखा है ''मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायें और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेद-पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे। आप किसी प्रीतिभोज का निमंत्रण दें और उसका मधुर शब्दों से स्वागत करने के स्थान पर व्यंगपूर्ण कटु शब्दों से उसकी अवमानना करें तो उसके लिए सारे स्वादिष्ट व्यंजन व्यर्थ हो जाते हैं।

''रहिमन रहिला ही भली, जो पर से चित लाये।
परसत मन मैला करे वह मैदा जरि जाय।।''

इस कवि कथ्य के अनुसार रुखा सूखा भोजन भी प्रेमपूर्ण मधुर वार्तायुक्त सत्कार की भावना से परोसा जाता है, तो वह मुस्कान के साथ अतिथि द्वारा ग्रहण तो किया ही जाता है, उसका गुणकारी पोषण भी उसे प्राप्त होता है। अग्निहोत्र में भी देवताओं का प्रीतिभोज के समान ही आह्वान किया जाता है।

भूमि-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण तो कतिपय भौतिक क्रियाओं तथा हवन की गैसीय प्रतिक्रियाओं से दूर हो जाते हैं, किन्तु ध्वनि-प्रदूषण सर्वाधिक सूक्ष्म प्रभावकारी होता है। विश्व में कहीं भी एक शब्द बोला जाता है तो वह सूक्ष्म विद्युत चुम्बकीय तरंगों में रूपान्तरित होकर सारे आकाश में फैल जाता है, तभी तो दूरदर्शन या आकशवाणी से वही शब्द सारे विश्व में एक साथ एक ही समय में प्रसारित हो जाते हैं। पृथ्वी के शोर, चीख-पुकार, नारेबाजी, चीत्कार, ध्वनि विस्तारक यन्त्रों से ध्वनि-प्रदूषण आकाश में भर जाता है, इस आकाश प्रदूषण का परिशमन किन शब्दों में संभव है? वेदमाता की वाणी से ही। ऐसा क्यों? देखिये कोई किशोर पुत्र लिखने-पढ़ने या अन्य आवश्यक कार्य करने में लापरवाही से भूल करता है और हितैषियों के परामर्श के बाद भी भूल को भयंकर भूल में दोहराता चला जाता है, तो फिर पिता उसे कठोर शब्दों से प्रताड़ित करता है, किन्तु यदि वह कोई सुधार लाने के स्थान पर घर छोड़ने व मर मिटने तक के लिए उद्यत हो जाता है, वहीं पर जब उसकी माता अपने प्रेम व सहानुभूति भरे मधुर शब्दों से दुलारते हुए समझाती है तो पुत्र सावधान होकर सतर्क हो जाता है। आप कह सकते हैं कि यह कार्य तो वेदवाणी तब भी करेगी, जब हवन न किया जा रहा हो। हाँ बात सही है। किन्तु हवन करते समय वेदमन्त्रों के उच्चारण के बहुत लाभ हैं। यथा, जब हम यज्ञ जैसा शुभ कर्म कर रहे हैं तो उसमें प्रभुवाणी उच्चारण का एक शुभ कर्म और जोड़ दें, फिर वेद मन्त्रों से यज्ञ कार्य की प्रेरणा प्राप्त कर लें, क्योंकि उनमें इस का वर्णन है, उत्तम आदर्श जीवन जीने की शिक्षा मन्त्रार्थ से प्राप्त कर लें, परमेश्वर की स्तुति, गुण-गान से जीवन में आस्तिकता का प्रादुर्भाव एवं अभिमान का अभाव कर लें और सर्वाधिक यह कि यज्ञ अग्नि की ज्वालाओं के द्वारा सूक्ष्म किये गए घृत सामग्री से उत्पादित वायु के सार्थक मन्त्रों एवं उनकी भावनाओं को सर्वत्र व्याप्त कर दें, जिससे ध्वनि प्रदूषण नभ मण्डल शुद्ध होकर कल्याणकारी शब्द गुण से भर जाये।

वर्तमान में शब्द ध्वनि का उपयोग आधुनिक चिकित्सा में नवीनतम पद्धति के रूप में किया जाने लगा है, जिसे अल्ट्रासोनिक वेव ट्रीटमेन्ट या शब्द ध्वनि तरंग उपचार कहते है। अल्ट्रासाऊन्ड आदि यन्त्रों द्वारा न केवल शरीर के आन्तरिक अंगों की दशा का ज्ञान कर लिया जाता है अपितु प्रभावित अंगो पर मन्त्र द्वारा शब्द तरंगों के स्पर्श से उसकी पीड़ा आदि को दूर कर दिया जाता है।

Ultrasonic या Supersonic wave treatment में यन्त्र के माध्यम से Sound waves को केंद्रित किया जाता है। इन Sound waves या शब्द लहरियों में इतना बल होता है कि शब्द-लहरियों को केन्द्रित करने वाले इन यन्त्रों से जब पीड़ा वाले स्थानों को कई दिन तक ५-७ मिनट के लिए छुआ जाता है तब ये दर्द चले जाते है। किसी भी बड़े चिकित्सालय में जाकर इस बात का पता तथा अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। वेद-मन्त्रों का उच्चारण क्या है? यह स्वर लहरियों (Sound waves) का ही तो वायु मंडल में प्रसारण है। अगर यन्त्र द्वारा Ultrasonic waves से रोग दूर किया जा सकता है, तो वेद-मन्त्रों से एक खास प्रकार के उच्चारण से ऐसी लहरें उत्पन्न कर देना जिनसे रोग का निवारण हो, कोई आश्चर्य की बात नहीं। कोई समय रहा होगा, जब वेदपाठी इस विधि को जानते थे, परन्तु वेद-मन्त्रों द्वारा वायु-मंडल को तथा मानव को प्रभावित कर देना आजकल के Ultrasonic waves द्वारा उपचार के ही समान हैं।

यज्ञ करते समय हम जो अनेक मन्त्रों का पाठ करते हैं उन मन्त्रों की ध्वनि तरंगें हमारे शरीर, मस्तिष्क, मन व आत्मा पर विशेष प्रभाव डालती हैं साथ-साथ वातावरण में जाकर समस्त वातावरण की दूषित ध्वनियों को समाप्त करती हैं तथा मधुरता, सरसता व ओजस्विता का प्रसार करती हैं क्योंकि मन्त्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति होती है। एक मन्त्र जाप एक प्रकार की चिकित्सा पद्धति है। मन्त्र साधना के सहारे प्रतिकूल प्रकम्पनों से बचा जा सकता है। जिस तरह रसायनशास्त्री यह जानता है कि किन-किन रसायनों के मेल से क्या नवीन व विशिष्ट रसायन बनता है वैसे ही ध्वनि वैज्ञानिक को यह भास होता है कि किन-किन शब्दों की संयोजना से किस-किस प्रकार की तरंगें पैदा होती हैं, वे पर्यावरण में व्याप्त परमाणुओं को कैसे प्रकम्पित करती हैं और उसकी परिणति किस प्रकार होगी। आज से लाखों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने भी इसी विज्ञान के आधार पर मन्त्रों की संयोजना की थी जिसे आधुनिक काल का वैज्ञानिक प्रमाणिक मानता है। मन्त्र ध्वनि के विशिष्ट समूह होते हैं। लगातार वही मन्त्र उच्चारण करते रहने से वातावरण में उन ध्वनि तरंगों का विशेष प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। यही मन्त्रों का परिणाम है।

जब शब्दों का उच्चारण होता है तब उनसे आकाश में कम्पन्न होता है। कम्पन समस्त लोक परिक्रमा कर लेती है और अनुकूल तरंगों को पाकर उससे मिल जाती है उसके संयुक्त प्रभाव से साधक की इच्छा को मूर्तरूप मिल जाता है। यज्ञ में वेद मन्त्रों के उच्चारण से ऐसी शब्द लहरें उत्पन्न कर देना है जिनसे न केवल आधि-व्याधियों का निवारण ही हो, प्रत्युत सम्पूर्ण आकाश ऐसे विषाणुओं से मुक्त होकर स्वच्च व हितकारी बना रहे।

ध्वनि तरंगों से मानसिक शान्ति भी उसी प्रकार से उद्दीप्त होती है जैसे वायु लहरियों के समीप में आने से अग्नि प्रज्जवलित होती है। इस प्रकार मनुष्य यज्ञ में प्रयुक्त मन्त्रों के प्रभाव से अनेक मानसिक रोगों से रहित हो जाता है।

दर्शनों में ईश्वर का स्वरूप

डॉ. मुमुक्षु आर्य

दर्शन के क्षेत्र में भारतीय दर्शनों का योगदान अत्यधिक है। भारतीय दर्शन नौ हैं, तीन नास्तिक, छ: आस्तिक। सभ्यता के आरम्भ में ही इस देश के मानव ने अपने जन्म और सृष्टि के चिन्तन के साथ जगत को देखना प्रारम्भ किया। जगत का रचना कर्ता ईश्वर है। इस ईश्वर के विषय में भारतीय दर्शन में भिन्नताएं है। इनका निरूपण इस प्रकार है। नास्तिक दर्शनों के अनुसार-चारवाक प्रलय में विश्वास नहीं करते अत:एव संसार को उत्पन्न करने के लिए ईश्वर की कल्पना ये नहीं करते। इनके अनुसार सृष्टि स्वत: मातापिता की परम्परा से हो जाती है। क्षितिज जलादि की उत्पत्ति त्रसरेणुओं के संगठन से हो जाती है, शरीर में चैतन्य भी भूतों के सम्मिश्रण से हो जाता है, जिस प्रकार कत्था, पान, चूना, सूपारी, आपस में मिलने पर उनमें स्वत: लाल रंग उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार भूतों के संगठन विशेष में अचानक चैतन्य उत्पन्न हो जाता है जिस प्रकार वर्षा के समय में मेंढ़कादि छोटे-२ कीड़े अपने आप भूतों से उत्पन्न हो जाते है; उसी प्रकार मनुष्यादि सब प्राणी भी भूतों से उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव ईश्वर को ये नहीं मानते।

बौद्ध दर्शन भी ईश्वर को नहीं मानता। तदनुसार पृथिव्यादि की उत्पति चार प्रकार के परमाणुओं व स्व विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार के समुदाय मात्र से ही हो जाती है। अत: ईश्वर की सत्ता नहीं। भगवान् बुद्ध स्वयं ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न चुप्पी (मौन) धारण करते थे। फिर भी बौद्ध में अर्हन मुक्त पुरुषों को ईश्वर तुल्य स्थान प्राप्त है। जैन दर्शन भी ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता इनके अनुसार मुक्त पुरुष ही ईश्वर तुल्य हैं। इस प्रकार ये तीनों नास्तिक दर्शन है। अत: स्पष्ट है कि वे ईश्वर को नहीं मानते। अब आस्तिक दर्शनानुसार ईश्वर स्वरूप वर्णित किया जाता है-

१. **सांख्यानुसार**- सांख्य दर्शन में ईश्वर को निमित्तकर्ता पुरुष माना गया है। वह त्रिगुणातीत, निर्लिप्त नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सृष्टि का कर्ता है। जगत का उपादान कारण तो प्रकृति है, क्योंकि उसी से २३ तत्वों की उत्पत्ति होती है। यह पुरुष स्वयंभू है अर्थात् किसी से उत्पन्न नहीं होता है। इसके स्वरूप के विषय में निम्न कारिकाएं हैं।

त्रिगुणमविकेकी विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतसतथा च पुमान्॥ तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य। कैवल्यं माध्यस्थ्यं दष्टत्वमकर्त्रामावश्च॥

प्रकृति (सत्व, अहंकार, मन, पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिया, पांच कर्मेन्द्रियां। चौवीसवां पदार्थ जीवात्मा, पच्चीसवां पदार्थ (पुरुष) ईश्वर है। इन पच्चीस पदार्थों के तत्व ज्ञान से जीवात्मा की मुक्ति होती है (सांख्य १.६१) सूत्र है- सत्वरजसतमसां साम्यावस्था प्रकृति: प्रकृतेमहान् महतो अहंकारो अहंकारात् पच्चतन्मात्राण्यु भय इन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्य: स्थूल भूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गण: यहां पुरुष शब्द आत्मा एवं परमात्मा दोनों के लिए आया है। परमात्मा-पुरुष की साम्यावस्था को भंग कर सृष्टि का निर्माण करता है।

२. **योगदर्शनानुसार :**- योग दर्शन सांख्यदर्शन का अनुकरण करता है परन्तु योग का मानना है जब पुरुष (निष्क्रिय) व प्रकृति में संयोग होता है तो प्रकृति को प्रेरणा देने वाला भी तो कोई ना कोई होना चाहिए, वही ईश्वर है।

ईश्वर का स्वरूप योगदर्शन प्रथम पाद में इस प्रकार वर्णित है-

* क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुष विशेष ईश्वर: (१.२४)
* तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्। (१.२५)
* स एष पूर्वेषामपि गुरू: कालेनानवच्छेदात्। (१.२६)
* तस्य वाचक: प्रणव:। (१.२७)
* तज्जपस्तदर्थ भावनम्। (१.२८)
* तत: प्रत्यक् चेतनाधिगमो अपि अन्तराया ऽभावश्च। (१.२९)

भावार्थ :- वह परमात्मा क्लेशों, सकाम कर्मों, कर्मफलों, संस्कारों से रहित एक विशेष प्रकार का पुरुष है। वह सर्वज्ञ गुरुओं का गुरु व काल से परे है। उसका वाचक नाम प्रणव है। उसका अर्थ सहित जप करने से उसका दर्शन होता है और सब विघ्न दूर होते हैं।

३. **न्यायविशेषिकानुसार**- न्यायविशेषिका दोनों ईश्वर की सत्ता मानते हैं, इनके अनुसार ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है। समवायिकारण परमाणु अनन्त हैं। इस विषय में उदयमनाचार्य ने ईश्वर: अस्तित्व में प्रमाण दिए हैं-

* घटादि की उत्पत्ति होती है। उसको उत्पन्न करने वाला एक कर्ता होता है। उसी प्रकार यह जगत् भी एक कार्य है अत: इसका भी कोई कर्त्ता होना चाहिए, वह साधारण मनुष्य तो हो नहीं सकता। अतएव जगत् को उत्पन्न करने के लिए सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तत्व होना चाहिए वही ईश्वर है।
* परमाणुओं के संयोग से सृष्टि की उत्पति होती है परन्तु परमाणु अचेतन हैं अत: उनमें संयोग उत्पन्न करने के लिए चेतन की आवश्यकता है वही ईश्वर है।
* जगत् का कोई आधार अवश्य है वही ईश्वर है।
* श्रुति प्रमाण है- (ऋ० १०-१९०-१,२,३)

भावार्थ :- परमात्मा ने अपने अनन्त सामर्थ्य, ज्ञान व बल से सूर्य, चांद, नक्षत्र, दिन, रात, समुद्र, मेघमण्डल, ऋतुएं बनाई हैं और उसी ने वेद रूपी ज्ञान-विज्ञान दिया है। सहज स्वभाव से सबको अपने वश में किया हुआ है। इस प्रकार न्याय वैशेषिक दोनों ईश्वरास्तित्ववादी हैं।-

४ **मीमांसकानुसार**- शबर का कथन है कि जगत् का कर्ता कोई ईश्वर है, इसमें कोई प्रमाण नहीं। कुमारिल प्रलय और सृष्टि नहीं मानते अतएव सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर को नहीं मानते, वस्तुत: **मीमांसकों** को ईश्वर के मानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी अतएव वे ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। भद्र ने परमात्मा को स्वीकार किया है या नहीं? इसका उत्तर है कि कुमारिल के मन में परमात्मा के अस्तित्व का पूर्ण विश्वास था किन्तु मीमांसा में उन्हें उसके सम्बन्ध में विचार करने का कोई प्रयोजन ही नहीं हुआ। इसमें प्रमाण है कि कुमारिल ने स्पष्ट कहा है कि परमात्मा के सम्बन्ध में जानने के लिए वेदान्त शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

दृढ़त्वमेतदिवषचश्च बोध: प्रयाति वेदान्तनिषेवणेन (श्लोकवार्तिक)

(शेष पृष्ठ ९ पर ....)

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-६ अंक-५ मुम्बई मई- २०१५ || पृष्ठ-१६ || मूल्य- रु. १/-

ज्येष्ठ २०७१ (२०१५) Post Date : 25-05-2015 MH/MR/N/136/MBI/-13-15 MAHRIL 06007/31/12/2015-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८०० / २६६०२०७५

प्रति,

शिष्टाचार

ब्र. नन्दकि[illegible]चार्य

शिष्ट-महाभाष्यकार ने शिष्टों और उनके आचार के प्रति बहुत आदरभाव व्यक्त किया है। शिष्ट शब्द का प्रयोग भाष्य में दो अर्थों में हुआ है- सज्जन तथा शास्त्र-विहित कर्म। पतन्जलि 'शिष्ट' किन्हें कहते हैं? यह प्रश्न करके उन्होंने स्वयं ही उत्तर भी दिया है। उन्होंने शिष्ट की दो विशेषताएँ स्वीकार की-निवास और आचार।

शिष्ट होने के लिए जो आचार चाहिए वह आर्यावर्त में ही सुलभ है। इसलिए आर्यावर्त में रहनेवाले वे ब्राह्मण, जो (१) कुम्भी धान्य, (२) अलोलुप, (३) इन्द्रियवशी, और (४) थोड़े-बहुत अन्तर में किसी न किसी विद्या में पारङ्गत है, शिष्ट माने जाते हैं।

('पतञ्जलिकालीन भारत' पुस्तक से उद्धत)

आचार्य की महिमा

(१) ऋत्विक् पुरोहिताचार्या मृदुब्रह्मधराहिते।
क्षात्रेणापि हि संसृष्टं तेजः शाम्पति वै द्विजे ।।

(महाभारत ५९/२४)

ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य- ये प्राय: कोमल स्वभाव वाले और वेदों को धारण करनेवाले होते हैं। क्षत्रिय का तेज भी ब्राह्मण के पास जाते ही शान्त हो जाता है।

(२) धर्म एव गतिस्तेषामाचार्योपासनाद् भवेद्।
देवलोकं प्रपद्यन्ते ये धर्म पर्युपासते।।

(महाभारत १६२ । ३०)

आचार्य की सेवा करने से मनुष्यों को एकमात्र धर्म का ही सहारा रहता है और जो धर्म की उपासना करते है, वे देवलोक जाते है।

(३) आचार्यस्य पितुश्चैव सख्युराप्तस्य चातिथे:।।
इदमस्ति गृहे मह्यमिति नित्य निवेदयेत्।
ते यद् वदेयुस्तत् कुर्यादिति धर्मो विधीयते।।

(महाभारत १९,२०, अ० ६७)

आचार्य, पिता विश्वासपात्र मित्र और अतिथि से सदा यह निवेदन करें कि अमुक वस्तु मेरे घर में मौजूद है, उसे आप स्वीकार करें। फिर वे जैसी आज्ञा दें, वैसा ही करें। ऐसा करने से धर्म का पालन होता है।

(४) य: श्रोत्रयोरमृतं संनिषिञ्चेद्, विद्यामविद्यस्य यथा ममायम्।
तं मन्येऽहं पितरं मातरं च, तस्मै न द्रुहोत कृतमस्य जानन्।।
ऋतस्य दातारमनुत्मस्य, निधिं निधीनामपि लब्धविद्या:।
ये नाद्रियन्ते गुरूमर्चनीयं, पापान् लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठा:।।

(महा भा० आ० ७६, ६३, ६४)

जो मेरे जैसे विद्याहीन मनुष्य के कानों में विद्यारूपी अमृ[illegible]चे, उस आचार्य को मैं अपना पिता और माता मानता हूँ। कोई भी मनुष्य ऐसे गुरु से उसके किए उपकार का स्मरण करते हुए कभी द्रोह न करे।

अतिश्रेष्ठ सत्यज्ञान को देवेवाले तथा कोशों में उत्तम विद्यारूपी कोश को प्राप्त करानेवाले पूजनीय गुरु का, जो उनसे विद्या-पाए लोग आदर नहीं करते, वे अस्थिर-मति होकर पापजनित दु:खमय लोकों को प्राप्त होते हैं।

(५) अध्यापिता ये गुरुन्नाद्रियन्ते,
विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीया-
स्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत्।।

(निरुक्त २।४)

जो विद्या पढ़ाए हुए ज्ञानवान् शिष्य अपने गुरुओं का वाणी, मन और आचरण से आदर नहीं करते, तो जैसे वे गुरु का पालन नहीं करते वैसे ही उनका पढ़ा हुआ ज्ञान भी उनके काम नहीं आता।

(६) नमो नमस्ते गुरवे महात्मने, विमुक्तसङ्गाय सदुत्तमाय।
नित्याद्वयानन्द सरस्वरूपिणे, भूम्ने सदाऽपारदयाम्बुधाम्ने।।

(विवे० ४८७)

महान् आत्मावाले, आसक्ति से रहित, सत्पुरुषों में उत्तम, सदा परमानन्द-रस में निमग्न रहनेवाले, विशाल ज्ञानवाले और अपार दया के सागर आप गुरुदेव के प्रति हमारा बारम्बार नमस्कार है।

(७) य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन।।

(मनु० २/१४४)

(य: ब्रह्मणा) जो गुरु या आचार्य वेदज्ञान के द्वारा (उभौ श्रवणौ अवितथम् आवृणोति) दोनों कानों को भलीभाँति परिपूर्ण करता है, (स: माता स: पिता ज्ञेय:) उसे माता, पिता समझना चाहिए (तं कदाचन न द्रुह्येत्) और उससे कभी द्रोह न करे

इसी प्रकार का श्लोक निरूक्त शास्त्र में है जो कि अर्थ और शब्दों की दृष्टि से मिलता-जुलता है-

य आवृणोत्यविथेन कर्णौ, अदु:ख कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन्।
तं मन्यते पितरं मातरं च, तस्मै न द्रुह्येत् कतमच्चनाह।।

(निरु० २ । १ । ४)